* सद्गुरवे नमः *

तुलसी पंचामृत

(सटीक)

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज कृत
पाँच ग्रन्थों से संग्रहीत

संग्राहक एवं टीकाकार—
पूज्यपाद सद्गुरु श्रीरामसूरत साहेब का
चरण-शिष्य
अभिलाषदास

प्रकाशक—
बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर
राजदरवाजा, वाराणसी।

सत्कबीराब्द ५७५
विक्रमी २०३१ सन् १९७४
द्वितीयावृत्ति २०००
मूल्य रु० ७·००

मुद्रक—
श्री विश्वेश्वर प्रेस,
बुलानाला, वाराणसी

समर्पण

सब प्रकार के फूल, पत्ते और वनस्पतियों पर भँवरा
बैठकर उससे सार ग्रहण कर लेता है।
इसी प्रकार जिनके हृदय में सबसे
गुण-ग्रहण करने की चेष्टा है,
उन साधु-सज्जनों के कर-
कमलों में सादर
समर्पित।

निवेदन

आदरणीय महात्मा श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज कृत 'सतसई' 'दोहावली' 'विनय-पत्रिका' 'कवितावली' तथा 'वैराग्य-संदीपनी'—मुख्य-मुख्य इन पाँच ग्रन्थों के संक्षिप्त सार वाणियों का यह 'तुलसी पंचामृत' एक संग्रह है।

'मानस-मणि' के सदृश इसमें भी कवि के व्यक्तित्व, कविता, भाषा, शैली आदि का मूल्यांकन एवं उनके सिद्धान्त की आलोचना तथा निर्धारण करने का कोई उद्देश्य नहीं है। उपर्युक्त ग्रन्थों से केवल सार-शिक्षा ग्रहण करने का ही उद्देश्य है।

'मानस-मणि' के समान इसके भी मूल पदों का सरल अर्थ किया गया है। पदों के गूढ़ाशयों एवं अपने विचारों को कोष्ठक-टिप्पणियों में दिये गये हैं। पूज्य सन्त-सज्जनों से निवेदन है कि वे इस संकलन से सार ग्रहण करें एवं नीति-धर्म आदि के अमूल्य उपदेशात्मक वचनों से लाभ उठावें। हमारे पारख सिद्धान्त का स्पष्टीकरण तो हमारे अन्य ग्रन्थों में ही पायेंगे।

इस ग्रन्थ के मूल-पदों के अर्थ करने में जिन महापुरुषों की टीकाओं से मुझे कुछ भी सहायता मिली है। उनका मैं सादर आभार स्वीकार करता हूँ। प्रमाद-वश मुझसे त्रुटि होना स्वाभाविक है। अपनी सब प्रकार की त्रुटियों के लिये मैं सभी सन्त सज्जनों से सविनय क्षमा-प्रार्थी हूँ।

श्री कबीर मन्दिर बड़हरा
वैशाख शुक्ल २०२४ सं०

विनम्र—
अभिलाषदास

विषय-सूची

तुलसी सतसई

तुलसी दोहावली से दोहे

तुलसी-कवितावली

तुलसी-विनय पत्रिका

तुलसी-वैराग्य संदीपनी

* सद्गुरवे नमः *

तुलसी-पंचामृत

प्रथम-बिन्दु

तुलसी-सतसई से संकलित

१—बिना उपासना सब व्यर्थ।

आसन दृढ़ अहार दृढ़, सुमति ज्ञान दृढ़ होय।
तुलसी बिना उपासना, बिनु दुलहे की जोय ॥ १ ॥

आसन में स्थिरता हो, आहार में सन्तोषवृत्ति हो, सुन्दर बुद्धि हो और सत्यासत्य का ज्ञान भी हो। परन्तु तुलसीदासजी कहते हैं, उपासना[1], भक्ति बिना, मानो वह बिना पति की स्त्री तुल्य है ॥ १ ॥

२—राम और काम एकत्र नहीं रहते।

जहाँ राम तँह काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबही होत नहिं, रबि रजनी यक ठाम ॥ २ ॥

जहाँ राम है, वहाँ काम (विषय-इच्छा) नहीं है, और जहाँ काम है, वहाँ राम नहीं है। तुलसीदास जी कहते हैं, सूर्य और रात्रि दोनों कभी एक स्थान पर नहीं हो सकते ॥ २ ॥

भाव—जिसके हृदय में कामादिक विकार हैं, अथवा जो अनेक सांसारिक इच्छाओं में बंधा है। उसके हृदय में स्व-स्वरूप चैतन्य रूप राम की स्थिति नहीं है। परन्तु जहाँ स्वरूपस्थिति है, वहाँ कामादिक नहीं।

१—नाना प्रकार की उपासना लोगों ने माना है। परन्तु वैराग्यवान् सद्गुरु सन्तों की ही उपासना सर्वोपरि है।

राम दूरि माया प्रबल, घटति जानि मन माहिं।
बढ़त भूरि रवि दूरि लखि, शिर पर पगतर छाहिं ॥ ३ ॥

जिसके हृदय से राम (स्व-स्वरूप चैतन्य) का ज्ञान-प्रकाश दूर है, उसके हृदय में माया प्रबल होती है। और राम का ज्ञान प्रकाश हृदय में होने से माया क्षीण होकर चरण-दासी बन जाती है। देखो जैसे सूर्य के दूर होने से छाया बहुत लम्बी होती है, परन्तु सूर्य के शिर पर आ जाने से, छाया क्षीण होकर, पैर के नीचे आ जाती है ॥३

३—जीवन में ग्रहण करने योग्य।

ज्ञान गरीबी गुण धरम, नरम वचन निरमोष।
तुलसी कबहुँ न छाड़िये, शील सत्य संतोष ॥ ४ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं, ज्ञान (सारासार-विवेक), दीनता धन, जाति, विद्या रूप, (देह आदि के मद-रहित) शुभगुण, मानव-धर्म, कोमल-वचन, निर्मानता, शील, सत्य और सन्तोष को कभी न छोड़ो ॥ ४ ॥

आसन वसन सुत नारि सुख, पापिहु के घर होय।
संतसमागम राम धन, तुलसी दुर्लभ दोय ॥ ५ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि भोजन, वस्त्र तथा स्त्री-पुत्र के सुख तो पापी के घर में भी रहते हैं। सन्तों की संगत और राम (स्वरूप-ज्ञान) धन—ये ही दोनों दुर्लभ है ॥ ५ ॥

४—मीठा बोलना ही, दूसरे को अपने वश में करने का उपाय है।

तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरण यह मंत्र है, परिहरु वचन कठोर ॥ ६ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं, मीठे वचन बोलने से चारों ओर सुख उत्पन्न होता है। यही वशीकरण (दूसरे को वश में करने का) मन्त्र है, अतएव कठोर वचन बोलना छोड़ दो ॥ ६ ॥

५—दूर रहने से मर्यादा रहती है।

मर्यादा दूरहि रहे, तुलसी किये विचार।
निकट निरादर होत है, जिमि सुरसरिवर बारि॥ ७॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि विचार करने से ज्ञात होता है कि दूर ही रहने से मर्यादा रहती है। नित्य पास में रहने से निरादर हो जाता है, जैसे श्रेष्ठ गंगा नदी का जल, हजारों कोस से लोग स्नान करने आते हैं, और निकट वाले उसी में मल-मूत्र करते हैं॥ ७॥

६—स्वभाववाद।

विविधि चित्र जल पात्र बिच, अधिक न्यून सम सूर।
कब कौने तुलसी रचे, केहि विधि पक्ष मयूर॥ ८॥

जल-पात्र (नदी, तालाबादि) में (पात्र-भेद से) छोटा, बड़ा तथा समान रूप से सूर्य के प्रतिबिम्ब दिखते हैं। इसी प्रकार मयूर के रंग-विरंगे पंखे—तुलसीदासजी कहते हैं—ये सब किसने, कब, किस प्रकार रचा है? (अर्थात् किसी ने रचा नहीं, स्वाभाविक हैं)॥ ८॥

काक सुता ग्रह न करै, यह अचरज बड़ बाय।
तुलसी केहि उपदेश सुनि, जनित पिता घर जाय॥ ९॥

(कहते हैं-कोयल अपने घर में अंडे का सेवन नहीं करती, काक के अंडे को गिराकर वहाँ अपने अंडे रख देती है। काक अपने अण्डे जानकर सेवन करता है। अण्डे फूटने पर जब बच्चे बड़े होते हैं, तब अपने माता-पिता के पास उड़ जाते हैं।) तुलसीदास जी कहते हैं यह बड़ा आश्चर्य है, कि कोयल के बच्चे को किसने उपदेश किया कि वह उड़कर पिता-माता के घर चला जाय। (यह उसका स्वभाव है)॥ ९॥

सुपथ कुपथ लीन्हें जनित, स्व स्वभाव अनुसार।
तुलसी सिखवत नाहिं शिशु, मूषक हनन मजार॥१०॥

तुलसीदास जी कहते हैं, कि अपने अपने स्वभाव के अनुसार, जन्मते ही, सुमार्ग-कुमार्ग के कर्तव्य लोग लिये आते हैं। बिलाई अपने बच्चे को चूहा मारने की शिक्षा नहीं देती (वह स्वभाव-वश स्वतः मारता है) ॥ १० ॥

तुलसी जानत है सकल, चेतन मिलत अचेत ।
कीट जात उड़ि तिय निकट, बिनहि पढ़े रतिदेत ॥११॥

तुलसीदास जी कहते हैं, कि यह सब कोई जानते हैं, कि चेतन के मिलने पर जड़ उसका कार्य करता है। (जैसे चैतन्यजीव देह त्याग कर वासना-वश जड़-कर्म एवं माता-पिता के जड़ रज-वीर्य में मिलता है। तब वे जड़-कर्म-रज-वीर्य, उसकी देह बना देते हैं—यह उसका स्वभाव है।) देखो ! पतिंगा उड़कर जब स्वजाति-स्त्री के पास जाता है, तो बिना काम-शास्त्र पढ़े ही, वह रतिदान करती है ॥११॥

होनहार सब आपते, वृथा शोच कर जौन ।
कंज शृङ्ग तुलसी मृगन, कहहु अमेठत कौन ॥१२॥

तुलसीदासजी कहते हैं, कि जो कुछ भवितव्य है, वह अपने आप होता है, उसके लिये चिन्ता करना निरर्थक है। दिन में खिले हुए कमल-पुष्प को रात में कौन सम्पुट कर देता है, और मृगों के सींग ऐंठे-ऐंठे ही जमते हैं, उसे कौन ऐंठता है ? कोई नहीं। वह स्वाभाविक है ॥ १२ ॥

७—अपना कल्याण करने में मनुष्य स्वतन्त्र है।

सुख चाहत सुख में बसत, है सुख रूप विशाल ।
संतत जा विधि मानसर, कबहुँ न तजत मराल ॥१३॥

सुख का रूप विशाल है (सब लोग हर क्षण सुख चाहते हैं), इसलिये सुख को चाहने वाले, सुखदायी स्थल (सत्कर्म-मनोनिग्रह) में निरन्तर उसी प्रकार बसते हैं; जिस प्रकार, हंस कभी मानसरोवर को नही छोड़ता ॥ १३ ॥

नीति प्रीति यश अयश गति, सब कहँ शुभ पहिचान।
बस्ती हस्ती हस्तिनी, देत न पति रति दान ॥१४॥

नीति, प्रीति, यश, अपयश, कल्याण (=कार्य) सब भलीभाँति पहचानते हैं। देखो ! बस्ती में हस्तिनी भी, अपने पति हस्ती को, रति-दान नहीं करती ॥१४॥

भाव—'मानुष तन गुण ज्ञान निधाना' वह अपना कल्याण कर सकता है।

तुलसी अपने दुःखते, को कहु रहत अजान।
कीश कुन्त अङ्कुर बनहिं, उपजत करत निदान ॥१५॥

तुलसीदासजी कहते हैं, कि अपने दुःख देने वालों (प्राणी-पदार्थ और कर्मों) से कौन अजानकार है ? कोई नहीं। देखो ! बन्दर जहाँ रहते हैं, वहाँ गड़ जाने वाले काँटों के अंकुरों को उत्पन्न होते ही, वे उखाड़ कर नष्ट कर देते हैं ॥१५॥

भाव—ज्ञानवान् मनुष्य अपने दुःखदायी कर्मों को जानने और त्यागने में स्ववश है।

८— जड़-चेतन-निर्णय का वास्तविक स्वरूप।

पुहुमी पानी पावकहु, पवनहु माह समात।
ताकहँ जानत राम अपि, बिन गुरु किमि लखि जात॥१६॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु—ये चारों तत्त्व जड़ हैं, इनमें परस्पर विरोध है; परन्तु चारों तत्त्वों से निर्मित देह में जो (जीव) प्रविष्ट है। उसी को निश्चय करके राम जानना चाहिये, परन्तु बिना गुरु के यह बात समझने में नहीं आती ॥ १६ ॥

शूर यथा गण जीति अरि, पलटि आव चलि गेह।
तिमि गति जानहि रामकी, तुलसी संत सनेह ॥१७॥

जैसे शत्रु के दल पर, शूर वीर अपनी विजय पाकर तथा लौट कर अपने घर में आकर, सुखी होता है, इसी प्रकार संतों के स्नेह

रूपी फौज लेकर मोहादिक शत्रु-पक्ष पर विजय करके और संसार से विमुख होकर, मुमुक्षु अपने चैतन्य स्वरूप-राम की स्थिति में सुखी होता है ॥१७॥

९—कर्मी जीवों के कर्म-फल-भोग ।

सुख पाये हर्षत हसत, खीझत लहे विषाद ।
प्रगटत दुरत निरय परत, केवल रत विष स्वाद ॥१८॥

अज्ञानी जीव सुख पाकर हर्षित होता और हँसता है तथा दुःख के प्राप्त होने पर खीजता है। जन्मता है, मरता है, नरकों में पड़ता है; केवल विषयों के स्वाद में आसक्त रहता है ॥१८॥

नाना विधि की कल्पना, नाना विधि को सोग ।
सूक्ष्म अरु स्थूल तन, कबहुँ तजत नहिं रोग ॥१९॥

काम, क्रोधादि नाना प्रकार की कल्पनायें तथा नाना प्रकार के शोक ये सूक्ष्म-शरीर (मन) के रोग हैं और ज्वरादिक शरीर के रोग हैं—ये कभी कर्मी जीवों का पीछा नहीं छोड़ते ॥१९॥

जैसे कुष्टी को सदा, गलित रहत दोउ देह ।
बिन्दहु की गति तैसिये, अन्तरहू गति येह ॥२०॥

जैसे कोढ़ी की दोनों देहें सदैव सड़ी रहती है। (स्थूल-शरीर सड़ा ही रहता है उसका मन भी सदैव क्षीण-दुखी रहता है।) इसी प्रकार वीर्य (कर्म-वासना-बीज) की भी दशा जानिये। कर्म-वासनायें बुरी है, तो मरणान्तर दुःखमयी दशा होगी ॥२०॥

त्रिधा देह गति एक विधि, कबहूँ ना गति आन ॥
विविधि कष्ट पावत सदा, निरखहिं सन्त सुजान ॥२१॥

(भूत-भविष्य-वर्तमान) तीनों जन्मों की देहों की गति एक ही प्रकार (कर्मों के अनुसार) है। (पहले नर जन्म में जो कर्म किया था, उसी के अनुकूल आज देह मिली है, जैसे आज करेंगे, वैसे आगे देह मिलेगी) अतः कर्म के विपरीत गति नही होती। इस प्रकार यह कर्मी जीव सदैव नाना कष्टों को झेलता है, इसे ज्ञानी सन्त ही तत्व से देखते हैं ॥२१॥

१०—दुखी जीवों के तारक संत हैं

तातें संत दयाल वर, देहि राम धन रीति ।
तुलसी यह जिय जानि कै, करिय बिहठि अति प्रीत ॥२२॥

इसलिये (जीवों को दुखी जानकर) श्रेष्ठ कृपालु सन्त स्वरूप ज्ञान रूप राम-धन जिज्ञासुओं को देते हैं, यही उनका व्यवहार है। तुलसीदासजी कहते हैं, कि हृदय में ऐसा जानकर हठ करके सन्तों से अत्यन्त प्रेम करो सन्त तुम्हें दुतकार दें-हटा दें, तो भी उनसे सच्चा प्रेम करो। कभी कृपा करके सत्य का बोध देंगे ही ॥२२॥

११—संत-स्वभाव ।

तुलसी संत सुअम्बु तरु, फूल फलहिं पर हेत ॥
इतते वे पाहन हनै, उतते वै फल देत ॥२३॥

तुलसीदासजी कहते हैं, कि सन्तजन अच्छे आम के पेड़ के समान होते हैं, जो दूसरे के लिये फूलता-फलता है। इधर से मनुष्य पत्थर मारता है, उधर से वह फल देता है ॥२३॥

भाव—कष्ट सहकर अपने सताने वाले का भी सन्त हित करते हैं।

दुख सुख दोनों एक सम, संतन के मन माहिं ।
मेरु उदधि गत मुकुर जिमि, भार भीजिबो नाहिं ॥२४॥

सन्तों के मन में, दुःख-सुख दोनों एक तुल्य होते हैं। जैसे सुमेरु पर्वत और समुद्र के प्रतिबिम्ब दर्पण में प्राप्त होते हैं, परन्तु दर्पण में न पर्वत का बोझा पड़ता है और न समुद्र के प्रतिबिम्ब से दर्पण भीगता ही है ॥२४॥

१२—गुरु-उपदेश-ग्रहण से भव-व्याधि का नाश ।

गुरु कहतब समुझै सुनै, निज करतब कर भोग ।
कहतब गुरु करतब करै, मिटै सकल भव रोग ॥२५॥

गुरु के उपदेश को सुने और समझे और अपने पूर्व कर्तव्यों के फल

प्रारब्ध-भोग को भोग ले। गुरु के कथन को अपने कर्तव्य में उतारे, तो संसार जनित सारे रोग मिट जाँय ॥२५॥

गुरु ते आवत ज्ञान उर, नाशत सकल विकार।
यथा निलय गति दीप कै, मिटत सकल अँधियार ॥२६॥

यथार्थ सद्गुरु के उपदेश-द्वारा ही हृदय में ज्ञान आता है, और अन्तःकरण के सारे विकार नष्ट हो जाते हैं। जैसे घर में दीपक लाने पर सम्पूर्ण अंधियारी मिट जाती है ॥ २६ ॥

१३—जीव की विशेषता।

जो जल जीवन जगत को, परशत पावन जौन।
तुलसी सो नीचे ढरत, ताहि नेवारत कौन ॥२७॥

जो जल जगत का जीवन दाता है, जिसके छूने से पवित्रता आती है। तुलसीदास जी कहते हैं, कि वही जल, नीचे बहता है, तो उसे दूसरा कौन ऊपर ले जाय ? ॥ २७ ॥

भाव—जिस जीव की कल्पना ही से सब मत-मतान्तर फैले हैं, जिस जीव की सत्ता से ही मुर्दा शरीर-मन चलते है। वही चेतन्य जीव अपने स्वरूप को भूलकर नीचे विषय मार्ग में पतित होता है, तो उसकी दृष्टि कुछ हुए बिना, उसे कौन उपदेश करे।

१४—अपनी करनी अपनी भरनी।

जो करता है करम को, सो भोगत नहिं आन।
बवनहार लुनि हैं सोई, देनी लहै निदान ॥२८॥

जो (जीव) कर्मों का करने वाला है, वही उसके फलों का भोगने वाला भी है, दूसरा नहीं। बोने वाला ही काटेगा, जो दिया गया है, वही अन्त में मिलेगा ॥ २८ ॥

१५—शुद्ध जीव को जड़ासक्त होने से सुख-दुख होते हैं।

रज अप अनल अनिल नभ, जड़ जानत सब कोइ।
यह चैतन्य सदा सुखरूप, कारज रत दुख होइ ॥२९॥

पृथ्वी, जल, अग्नि; वायु और आकाश—इन पाँचों को सब कोई जड़ करके जानते हैं, (इनमें बलपूर्वक या समझ बूझकर, जीव को दुःख देने की शक्ति नहीं है) और जीव तो सदैव शुद्ध चैतन्य ज्ञान स्वरूप है, अतः इसमें स्वाभाविक दुःख-सुख के प्रपञ्च नहीं। केवल जड़कार्यों में आसक्त होने से (प्रवृत्ति में पड़ने से) शुद्ध चैतन्य जीव को, दुःख होता है ॥ २९ ॥

निजकृत बिलसत सो सदा, बिन पाये उपदेश।
गुरु पग पाय सुगम धरै, तुलसी हरै कलेश ॥३०॥

वह शुद्ध चैतन्य जीव (स्वस्वरूप-भूल-वश) सद्गुरु के स्वरूप-ज्ञानात्मक उपदेश पाये बिना, अपने किये हुए कर्म-भोगों में बिलसता है। तुलसीदास जी कहते हैं, कि जीव जब सद्गुरु का उपदेश पायेगा, तब स्वरूप ज्ञान के सुन्दर मार्ग पर पैर रखेगा। फिर तो इसके सम्पूर्ण क्लेश मिट जायँगे ॥ ३० ॥

सलिल शुक्र श्रोणित समुझु, पल अरु अस्ति समेत।
बाल कुमार युवा जरा, है सु समुझि करु चेत ॥३१॥

जल के अंश वीर्य और रज एकत्र होकर (वहाँ जीव के जाने पर) मांस तथा हड्डी-सहित शरीर बनता है—ऐसा समझो। वही रज-वीर्य तथा हाड़-मांसमय देह बाल्य, कुमार, युवा और वृद्धावस्था को प्राप्त होकर (प्रारब्ध कर्म समाप्त होने पर मिट जाता है)—ऐसा समझ कर चेत करो ॥ ३१ ॥

भाव—जिस देह में तुम्हारा अहंकार है, वह उपर्युक्त प्रकार से घृणित, परिवर्तनशील एवं नाशवान समझकर, देह मद से सावधान होओ, कल्याण करो।

१६—संत कौन है ?

जानै राम स्वरूप जब, तब पावै पद संत।
जन्म मरण पद से रहित, सुखमा अमल अनन्त ॥३२॥

जब स्वरूप को ही राम जाने अथवा राम के स्वरूप जाने तब मनुष्य संत पद को प्राप्त होता है। वह पद, जन्म-मरण पद से रहित शुद्ध, शान्त, स्वरूप, निर्मल तथा नित्य है ॥ ३२ ॥

१७—स्वरूप भूल कैसे ?

आपुहि मद को पान करि, आपुहि होत अचेत ।
तुलसी विविध प्रकार को, दुख उत्पति करि लेत ॥३३॥

मनुष्य स्वतः मदिरा पीकर, स्वतः अचेत होता है। तुलसीदासजी कहते हैं, कि इसी प्रकार जीव स्वतः विषय में प्रमत्त होकर, स्वस्वरूप को भूला रहता है, और अज्ञानयुत कर्म करके अनेकों प्रकार के दुःखों की उत्पत्ति कर लेता है ॥ ३३ ॥

१८—किसी से विरोध करना भूल है।

जासों करत विरोध हठि, कहु तुलसी को आन ।
सो तैं राम नहिं आन तब, नाहक होत मलान ॥३४॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि, जिससे तुम अकारण ही शत्रुता करते हो, भला ! बताओ, वह दूसरा कौन है ? वह तो तुम्हारे ही समान चैतन्य है, वह तुम्हारा विजातीय नहीं— स्वजातीय है, फिर व्यर्थ क्यों मन-मलीन कर रहे हो ? ॥ ३४ ॥

चाहसि सुख जेहि मारिके, सो तौ मारि न जाय ।
कौन लाभ विषते बदलि, तै तुलसी विष खाय ॥३५॥

जिसको मारकर तुम सुख चाहते हो, वह तो कदापि मारा नहीं जा सकता, (चैतन्य अजर-अमर है) केवल एक देह का नाश करोगे। तुलसीदास जी कहते हैं, इसमें क्या लाभ है ? विष से बदल कर विष खाना है। (दूसरे को मारोगे, तो बदले में स्वयं मारे जाओगे, अतः किसी जीव को मत मारो) ॥ ३५ ॥

क्रोध-द्रोह अघ मूल है, जानत को कहु नाहिं ।
दया धरम कारण समुझि, को दुख पावत ताहिं ॥३६॥

क्रोध तथा वैर पाप की जड़ है, कहो भला ! यह कौन नहीं जानता है ? धर्म का कारण दया समझो, भला दया करने से कौन दुःख पायेगा ? कोई नहीं ॥ ३६ ॥

१९—मानवता किसमें ?

बनो बनायो है सदा, सद्बुद्धि रहित नहिं शूल ।
अरुण बरण केहि काम को, बिना बास को फूल ॥३७॥

अपना शुद्ध स्वरूप चैतन्य बना बनाया (अकृत्रिम-अजर-अमर) और नित्य है; ऐसा समझकर, जो विषय वासनाओं तथा तज्जनित हिंसादि से रहित नहीं होता, इस लिये सब कष्ट जीव को प्राप्त होते हैं। सुगन्धि-रहित, लाल रंग का देखने में अच्छा फूल, किस काम का ? ॥ ३७ ॥

भाव-सुन्दर मानवशरीर किस काम का यदि अविनाशी स्व-स्वरूप का ज्ञान न हुआ और हिंसा-विषय से रहित न हुआ ।

तुलना कीजिये श्री कबीर साहेब की इस साखी से—

बना बनाया मानवा, बिना बुद्धि वे तूल ।
काह लाल ले कीजिये, बिना बास को फूल ॥

(बीजक)

२०—तुच्छ कौन ?

जिनके हरि बाहन नहीं, दधि सुत सुत जेहि नाहिं ।
तुलसी ते नर तुच्छ हैं, बिना समीर उड़ाहिं ॥३८॥

विष्णु का वाहन गरुण को माना है, गरुण से यहाँ 'गरुता-गम्भीरता' का अर्थ है। दधि (समुद्र) का पुत्र चन्द्रमा को माना है और चन्द्रमा का पुत्र बुध। बुध से यहाँ 'शुद्ध बुद्धि' का तात्पर्य है। गोस्वामी जी कहते हैं, कि जिनमें 'गरुता गम्भीरता' एवं 'शुद्ध-बुद्धि' नहीं है, वे बिना वायु (बिना विचार) के उड़ने वाले, तुच्छ मनुष्य हैं ॥ ३८ ॥

२१—स्वरूप-ज्ञान बिना दुःख नहीं मिटता ।

तुलसी जम गन बोध बिन, कहु किमि मिटै कलेश ।
ताते सद्गुरु शरण गहु, याते पद उपदेश ॥३६॥

'जम' 'गन' इन दोनों शब्दों के आदि-आदि के अक्षर मिलाने से 'जग' और अन्त-अन्त के अक्षर मिलाने से मन होता है। तुलसीदास जी कहते हैं, कि जग में मन फंसा है, इसी से सब दुःख है। बिना स्व-स्वरूप का बोध हुए यह क्लेश कैसे मिटे ? अतएव विवेकी सद्गुरु की शरण ग्रहण करो, तब वे यथार्थ उपदेश देंगे और बोध होकर, तुम्हारा दुःख दूर हो जायगा ॥ ३६ ॥

भगन जगन कासों करसि, राम अपर नहिं कोइ ।
तुलसी पति पहिचान बिनु, कोउ तुल कबहुँ न होइ ॥४०॥

भगन = भग्न, टूटा हुआ, उदास, वैर; जगन = जगत राग, प्रेम; अपर = दूसरा; तुल = शुद्ध ।

तुलसीदास जी कहते हैं कि वैर-प्रेम किससे कर रहा है; राम कोई दूसरा नहीं है। वास्तविक पति की पहचान के बिना, कोई कभी शुद्ध नहीं हो सकता ॥४०॥

२२—जीव के हित अहित करने वाले कौन हैं ?

को हित संत अहित कुटिल, नाशक को हित लोभ ।
पोषक तोषक, दुखद अरि,—शोषक तुलसी क्षोभ ॥४१॥

प्रश्न—हितकारी कौन है ?
उत्तर—सन्त ।
प्रश्न—अहितकारी कौन है ?
उत्तर—कुटिल मनुष्य ।
प्रश्न—हित का नाश करने वाला कौन है ?
उत्तर—लोभ ।
प्रश्न—सुखी करने वाला कौन है ?

उत्तर—सन्तोष।

प्रश्न—शोषण करने वाला दुःखदाई शत्रु कौन है ?

उत्तर—क्षोभ (ग्लानि-शोक) ॥४१॥

२३—शुभ गुण सुख देते हैं।

शम दम समता दीनता, दान दयादिक रीति।
दोष दुरित हर दर दरद, उर बर बिमल बिनीति ॥४२॥

शम, दम, समता, नम्रता, दान, दया, आदि के व्यवहार दोष-पाप को हरण करके तथा दर्द को दलन करके हृदय को अत्यंत निर्मल और बिनम्र कर देते हैं ॥ ४२ ॥

२४—महान पुरुष के लक्षण।

धरम धुरीन सुधीर धर, धारन बर पर पीर।
धरा धराधर सम अचल, बचन न बिचल सुधीर ॥४३॥

धर्म की धुरी को धारण करने में जो अच्छे धैर्यवान हैं। पराये की पीड़ा को अपने ऊपर उठा लेने में जो श्रेष्ठ हैं। जिन प्रबल धैर्यवान् के वचन पृथ्वी और पर्वत के समान ही कभी विचलित नहीं होते—वे ही महान पुरुष हैं ? ॥ ४३ ॥

२५—ज्ञानी सुख-दुःख के पार हैं।

चन्द्र अनल नहिं हैं कहूँ, झूठो बिना बिवेक।
तुलसी ते नर समुझि हैं, जिनहिं ज्ञान रस एक ॥४४॥

सुख-दुःख कहीं नहीं हैं, विवेक-रहित मानन्दी मात्र होने से झूठे हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, कि यह बात वे ही मनुष्य समझेंगे, जो ज्ञान की रहनी में एक रस चलते हैं ॥ ४४ ॥

भाव-गोस्वामी जी के कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि चन्द्रमा सूर्य हैं ही नहीं। चन्द्रमा-सूर्यादि-सहित यह विश्व तो अनादि और अनन्त प्रत्यक्ष है। चन्द्रमा सूर्य यहाँ सुख-दुःख में अभिप्रेत हैं। अर्थात् सुख-दुख मानन्दी मात्र हैं। एक रस ज्ञानी पुरुष सुख-दुख से पार हैं।

२६—वाणी-जल ।

त्रिविधि भाँति को शब्द वर, विघटन लट परमान ।

कारन अविरल अल पियत, तुलसी अविध भुलान ॥४५॥

रोचक, भयानक और यथार्थ—तीन प्रकार के शब्द हैं। वर (श्रेष्ठ विधि योग्य) विघटन (खंडनयोग्य) दोनों प्रकार के शब्द, केश के लट के समान एक में लिपटे हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, कि बन्धन के कारण रूप अविरल (सघन) वाणी का अल (पसारा) होने से, अयुक्त वाणी रूप पानी को पीकर, अज्ञानी जीव भूल गये हैं।

दिगभ्रम जाको होत है, कौन भुलावत ताहिं ।

जानि परत गुरु ज्ञान ते, सब जग शंसय माहिं ॥४६॥

जिसको दिशाभ्रम होता है, उसको दूसरा कौन भुलाता है ? कोई नहीं। (इसी प्रकार जीव विषय-वश स्वतः भूलता है।) यह भूल-भ्रम सद्गुरु के ज्ञान से जान मिलता और छूटता है, इसके अतिरिक्त जगत के समस्त गुरु-विमुख जीव भ्रम में पड़े हैं॥ ४६ ॥

कारण चारि विचारु वर, वर्णन अपर न आन ।

सदा सोऊ गुण दोषमय, लखि न परत बिन ज्ञान ॥४७॥

शब्द में भूलने के श्रेष्ठ हेतु चार हैं, इसके अतिरिक्त दूसरे हेतु नहीं कहे जाते। वे चारों हेतु भी सदैव गुण-दोष मय कहे जाते हैं, परन्तु बिना यथार्थ ज्ञान के लखने में नहीं आते॥ ४७॥

जाति, स्वामित्व, गुण, क्रिया – भूल के चार कारण हैं। तिसमें गुण-दोष हैं।

जाति—

गुण—हम ब्राह्मण हैं, यदि उच्च कर्म नहीं करेंगे, तो नीच तुल्य हैं। अतः हमें उच्च कर्म करने चाहिये।

दोष—अपने धर्म-कर्म जानते नहीं, अभिमान पूर्वक बोलते हैं कि हम ब्राह्मण हैं, अच्छा कर्म न करें, बुरे कर्म करें तो भी उच्च हैं। "देखो ! सोना चाहे मल में पड़ा रहे तो भी श्रेष्ठ है।"

स्वामित्व—

गुण—हमें लोग महाराज, स्वामी, महन्त, आचार्य, गुरु, महात्मा कहते हैं और मर्यादा करते है। यदि हम इन श्रेणियों के कर्त्तव्यों का पालन न करेंगे, तो नीच-अधम कहे जायँगे।

दोष—मिथ्या पाखण्ड बनाकर सबसे अपने को पुजवाने और बड़ा मनवाने की चेष्टा करना। मान-बड़ाई में भूले रहना। मदी हो जाना।

गुण—

गुण—हम सुन्दर शरीर पाये हैं, भजन न करेंगे, तो नीची खानियों में जायँगे।

दोष—हम सुन्दर, गौरवर्ण, श्याम वर्ण, गुणवान। हमारे बराबर कौन है ?

क्रिया—

गुण—हमने वेद-विद्या पढ़ी, यदि हमारे उच्च आचरण न हुए, तो हम पशु-तुल्य हैं।

दोष—विद्या का फल (नम्रता, स्वरूप-ज्ञान-सदाचरण) प्राप्त किये नहीं। केवल अभिमान भर गया कि हम विद्वान, कवि एवं गुणवान हैं।

यह करतब सब ताहि को, यहि ते यह परमान।
तुलसी मरम न पाइहौ, बिन सद्गुरु वरदान ॥ ४८ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि इससे यह प्रमाणित होता है कि इस भूल-कर्तव्य के कारण उपर्युक्त चार ही हैं। परन्तु बिना सद्गुरु के उपदेश रूपी आशीर्वचन के प्राप्त हुए, इस भूल का भेद न पाओगे ॥ ४८ ॥

दिग भ्रम कारण चारि ते, जानहिं संत सुजान।
ते कैसे लखि पाइहैं, जे वहि विषम भुलान ॥ ४९ ॥

स्व-स्वरूप-भूल रूपी दिशा-भ्रम के कारण उपर्युक्त चार हैं—इसको विवेकी सन्त जानते हैं। और जो कठिन विषयों में भूले हैं, वे इस भूल के कारण को कैसे जान सकते हैं? ॥ ४९ ॥

सुख दुख कारण सो भयऊ, रसना को सुतबीर।
तुलसी सो तब लखि परै, करै कृपा बर धीर ॥५०॥

जिह्वा का वीर-पुत्र (शब्दजाल) ही सुख-दुःख का कारण हुआ। तुलसीदासजी कहते हैं, यह वाणी-जाल का बन्धन तब समझने में आयेगा, जब श्रेष्ठ धैर्यवान—जितेन्द्रिय सद्गुरु कृपा करके समझावें ॥ ५० ॥

अपने खोदे कूप महँ, गिरे यथा दुख होइ।
तुलसी सुखद समुझि हिये, रचत जगत सब कोइ॥ ५१ ॥

अपने से खोदे हुये कूप में गिरने पर जैसे दुःख होगा, (वैसे ही अपनी बनाई हुई कल्पित वाणीजाल के कुयें में गिरकर सब जीव दुखी हैं)। तुलसीदासजी कहते हैं, कि सब कोई अपने हृदय में सुखदायी जल का दाता कुयें को समझ कर संसार में बनाते हैं। अथवा स्त्री-पुत्रादि संसार की रचना, सब कोई मन में सुखदायी समझकर करते हैं, परन्तु वही जीव के गिरने के लिये कुआँ हो जाता है ॥ ५१ ॥

कूप में अपने को गिरने से बचावे, केवल उसमे सुखद जल को ग्रहण करे, तो कूप सुखदायी है। इसी प्रकार विचार की वाणी सुखदायी है। कल्पित वाणी से अपने को बचावे।

ताविधि ते अपनो विभव, सुख दुख दे करतार।
तुलसी कोउ कोउ संत वर, कीन्हें विरति विचार ॥ ५२ ॥

उपर्युक्त प्रकार से स्त्री-पुत्र, घर-धन तथा विद्या-वाणी के अपने ही ऐश्वर्य, कर्ता जीव को सुख-दुख (बन्धन) देते रहते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, कि कोई-कोई श्रेष्ठ सन्त विचार पूर्वक वैराग्य धारण करके उपर्युक्त बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं ॥ ५२ ॥

रसना ही के सुतउ पर, करत करन तर प्रीति ।
तेहि पीछे जग सब लगे, समझ न रीति अरीति ॥५३॥

जिह्वा के ही पुत्र (शब्द जाल) को लोग अपने कान से सुनकर, उसमें अत्यंत प्रेम करते हैं। जगत् के सब जीव इसी (शब्द-जाल) के पीछे लगे हैं, योग्य-अयोग्य का विचार नहीं करते ॥ ५३ ॥

माया मन जिव ईश भनि, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
सुर देवी औ ब्रह्म लौं, रसना सुत उपदेश ॥ ५४ ॥

माया मन में जीव फंसा है; इसके छुड़ानेवाले ईश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर; देवी, देवता और ब्रह्म तक कथन—सब रसना-सुत (वाणी) का उपदेश मात्र है ॥ ५४ ॥

वर्णधार वारिधि अगम, को गम करै अपार ।
जन तुलसी सत्संग बल, पाये विशद विचार ॥ ५५ ॥

वर्णों की धारा—शब्द समुद्र (वेद, शास्त्र; संहिता, रहस्य, नाटक, पुराण, तंत्र आदि) अगम-अपार हैं, इनका कौन थाह लगा सकता है ? तुलसीदासजी कहते हैं कि सत्संग के बल से जब श्रेष्ठ विचार प्राप्त होता है, तभी जीव इस वाणी जाल से छूटता है ॥ ५५ ॥

गहि सुबेल बिरले सबुझि, बहि गये अपर हजार ।
कोटिन बूड़े खबरि नहिं, तुलसी कहहिं विचार ॥ ५६ ॥

विरले ही विवेकवान् सत्संग रूपी अच्छी बेलि (लता) को पकड़ कर बच गये अन्यथा दूसरे इस वाणी की धारा में हजारों बह गये। तुलसीदास जी विचार करके कहते हैं कि करोड़ों वाणी-समुद्र में डूब मरे, उनका पता तक नहीं है ॥ ५६ ॥

२७—अद्वैत-निरसन

श्रवण सुनत देखत नयन, तुलत न विविध विरोध ।
कहहु कही केहि मानिये, केहि विधि करिय प्रबोध ॥५७॥

वेदादिक वाणियों में कान से सुना जाता है, कि एक ही आत्मा या ब्रह्म सर्वत्र परिपूर्ण है; परन्तु प्रत्यक्ष नेत्रों से अनेकों विरोध देखने से बात तुलती नहीं। कहो भला ! किस की कही हुई बात मानी जाय, किस प्रकार से सन्तोष किया जाय ? ॥ ५७ ॥

भाव—वाणी-जाल का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी कहते हैं कि वेद-उपनिषदों में एक आत्मा या ब्रह्मही सर्वत्र परिपूर्ण बताया गया है। द्वैत है ही नहीं ऐसा सुना जाता है और प्रत्यक्ष विवेक से देखा जाता है, तो नाना विरोध पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के गुण धर्मों में विरोध। सब जीवों के कर्म-गुण-संस्कारों में विरोध। नाना मत-मतान्तरों में विरोध। भला एक ही ब्रह्म है, तो यह विरोध क्यों ?

श्रवणात्मक ध्वन्यात्मक, वर्णात्मक विधि तीन।

त्रिविधि शब्द अनुभव अगम, तुलसी कहहिं प्रवीन ॥५८॥

श्रवणात्मक (वायु में फैला हुआ ध्वन्यात्मक (तबला-सितारादि के घर्षण से प्रगट) वर्णात्मक (मनुष्य द्वारा बोले गये) ये तीन प्रकार के शब्द होते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि इन तीन प्रकार के शब्दों का ज्ञान अगम अपार है। प्रवीण आचार्य गण अपने-अपने अनुभव से अपने मतानुसार कल्पना कर-कर के अर्थ लगाते हैं, परन्तु थाह कोई नहीं पाते ॥ ५८ ॥

कहत सुनत आदिहि वरण, देखत वर्ण विहीन।

दृष्टिमान चर अचर गण, एकहि एक न लीन ॥५६॥

कहने-सुनने में आदि ही वर्ण आता है (अर्थात् वेदों से एक ही ब्रह्म व्याप्त सिद्ध होता है); परन्तु विवेक से देखने पर, अद्वैत के वर्ण से रहित (नाना) दिखते हैं। अथवा कहने-सुनने में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवादि ईश्वर के अवतार हैं; परन्तु देखने में काम, क्रोध, राग-द्वेष में ग्रसित अज्ञानीवत् हैं। जहाँ तक दृश्यमान चैतन्य-जड़ का समूह है, वे एक में एक लीन नहीं दिखते (जड़—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आदि भी पृथक पृथक गुण-धर्म वाले हैं, और चैतन्य भी नाना हैं) ॥ ५६ ॥

पंच भेद चर गण विपुल, तुलसी कहहि विचार।
नर पशु स्वेदज खग कृमी, बुध जन मति निरधार ॥६०॥

तुलसीदासजी कहते हैं, कि देह धारी जीव समूहों में मनुष्य पशु, स्वेदज, पक्षी और कीड़े—ऐसे पांच मुख्य भेद हैं और इसमें सामान्य भेद विपुल (बहुत) हैं। विवेकी जन इसका विचार करके अपना मत निर्धारित कर लेंगे, कि चेतन एक नहीं, अनेक हैं ॥ ६० ॥

अति विरोध तिन महँ प्रबल, प्रकट परत पहिचान।
अस्थावर गति अपर नहिं, तुलसी कहहिं प्रमान ॥६१॥

उपर्युक्त जीवों में अत्यंत विरोध है (सिंह मनुष्यादि को मार खाते, अन्य जीव अन्य को खा जाते); यह व्यवहार प्रत्यक्ष परखने में आता है। अस्थावर जड़ वृक्षादि में भी दूसरी बात (अद्वैत) नहीं है (आम, नीम, बेर नारंगी, काँटे फूल एक-के-एक प्रतिकूल ही हैं)। अतः तुलसीदास जी सत्य कहते हैं—अद्वैत नही है ॥ ६१ ॥

रोम रोम ब्रह्माण्ड बहु, देखत तुलसी दास।
बिन देखे कैसे कोऊ, सुनि माने विश्वास ॥६२॥

तुलसीदासजी कहते हैं, कि (वेद कहता है—) उस ब्रह्म के रोम-रोम में ब्रह्माण्ड हैं, परन्तु यह बात देखने में नहीं आती। बिना देखे, मात्र सुन करके कोई कैसे विश्वास मान ले ॥ ६२ ॥

वेद कहत जहँ लग जगत, तेहिते अलग न आन।
तेहि अधार व्यवहरत लखु, तुलसी परम प्रमान ॥६३॥

वेद कहते हैं, जहाँ तक जगत् है, उस ब्रह्म से पृथक नहीं है। तुलसीदासजी कहते हैं, इस वेद-वाक्य को परम प्रमाण मानकर लोग व्यवहार (आचरण) करते देखने में आते हैं ॥ ६३ ॥

सर्षप सूझत जाहि कहँ, ताहि सुमेरु असूझ।
कहेउ न समुझत सो अबुध, तुलसी बिगत बिसूझ ॥६४॥

जिसको सरसो के दाने दिखायी दें, उसे सुमेरु पर्वत नहीं दिखता

(अति लघु जीव अनुभव में आता है, व्यापक अद्वैत ब्रह्म अनुभव में आता नहीं)। तुलसीदासजी कहते हैं, जो समझाने पर भी नहीं समझता, वह अज्ञानी सूझ-बूझ रहित है ॥ ६४ ॥

कहत अवर समुझत अवर, गहत तजत कछु और।

कहेउ सुनै समुझत नहीं, तुलसी अति मति बौर ॥ ६५ ॥

कहते हैं कुछ और (जगत तीनों काल में नहीं, एक ब्रह्म ही सत्य है), परन्तु हृदय में समझते कुछ और (जगत-व्यवहार सत्य तथा नाना जीव। नाना जीव न समझें तो स्वमत परमत का झगड़ा क्यों ठानें ?)। सांसारिक विषय वासनाओं तथा माया प्रपंच को ग्रहण करते हैं, और सत्य-सदाचार, विवेक-वैराग्य-भक्ति आदि त्यागते हैं। सन्तों के कहे हुए वचनों को सुनकर भी नहीं समझते, तुलसीदासजी कहते हैं कि लोगों की बुद्धि अत्यन्त पगली हो गई है ॥ ६५ ॥

देखौ करै अदेख इव, अनदेखो विश्वास।

कठिन प्रबल ता मोह की, जल कहँ परम पियास ॥६६॥

जो विवेक युत देखने में आता है (जड़-चेतन में विरोध) उसे अनदेख के समान करता है (कहता है एक ही है); और जो अनदेखा (अद्वैत है, उस पर विश्वास करता है। इस अज्ञान की अत्यन्त प्रबलता है, जल ही को बड़ी प्यास लग गयी (जो सदैव तृप्त स्वरूप अपना चैतन्य पद है वह तृप्ति के लिए दूसरे की कल्पना करने लगा) ॥६६॥

सुन्यो श्रवण देखो नयन, शंसय मनहिं समान।

तुलसी समता असम भो, कहत आन कहँ आन ॥६७॥

वेदान्तियों-द्वारा कान से तो सुना अद्वैत ब्रह्म, परन्तु नेत्रों से देखने मेंजड़ चेतन पृथक-पृथक आये, अतएव मन में भ्रम समा गया। तुलसीदासजी कहते हैं, कि इनकी समता वहीं विषम हो गई, जहाँ दूसरे को दूसरा कहने लगे। (अद्वैतवादी होकर भी द्वैत कार्य—प्रचार, भाषण खण्डन-मण्डन करने लगे) ॥ ६७ ॥

वसही भव अरि हित अहित, सोपि न समुझत हीन ।
तुलसी दीन मलीन मति, मानत परम प्रवीन ॥६८॥

मन तो संसार-शत्रु के वश हो गया, हित (सत्संगमार्ग) अहित (विषय मार्ग) भी नीच नहीं समझता । तुलसीदासजी कहते हैं, दीन-मलीन बुद्धि को धारण करके भी लोग अपने को परम बुद्धिमान मानते हैं ॥ ६८ ॥

भटकत पद अद्वैतता, अटकत ज्ञान गुमान ।
सटकत वितरन ते विहठि, फटकत तुख अभिमान ॥६९॥

'एकोब्रह्म द्वितियोनास्ति' के अद्वैतता पद में भूले और 'ब्रह्मज्ञान ही सर्वोपरि है' ऐसे अभिमान में फंस गये । वितरन (कल्याण-मार्ग सत्संग; विवेक; नम्रता भक्ति, वैराग्य आदि) से हठ पूर्वक सटकने (दूर होने) लगे और अद्वैत की अभिमान रूपी भूसी को फटकने लगे, एक ब्रह्म की डींग हाँकने लगे) ॥ ६९ ॥

२८— बन्धन विषय-मार्ग ।

जो चाहत तेहि बिन दुखित, सुखित रहित ते होइ ।
तुलसी सो अतिसय अगम, सुगम राम ते सोइ ॥७०॥

स्त्री आदिक जिन विषयों को जीव चाहता है, उसके मिले बिना वह दुखित रहता है; सुखी तो तभी होगा, जब स्त्री आदि विषय-वासनाओं से रहित हो जाय । तुलसीदासजी कहते हैं, कि (बिना सत्संग-विवेक के) उपर्युक्त विषयों से रहित होना अत्यन्त अगम है, यह तो (सत्संग द्वारा) राम (स्वस्वरूपज्ञान) की प्राप्ति होने पर ही, सुगम हो सकता है ॥ ७० ॥

२९—माता-पितादि बांधने वाले हैं ।

मात पिता निज बालकहिं, करहिं इष्ट उपदेश ।
सुनि माने विधि आप जेहिं, निज शिर सहे कलेश ॥७१॥

माता-पिता अपने बच्चों को विवाह-सादी करने का, अपनी समझ से हितकारी उपदेश करते हैं। देखो ! विष्णु-पिता का (सृष्टि करने का) उपदेश सुनकर, उसे ब्रह्मा ने माना, तो अपने शिर पर, सृष्टि करने का कष्ट सहे।। ७१ ।।

भाव—अपने स्वार्थ-वश माता-पिता पुत्र को विषय का पाठ पढ़ाकर, विवाह-शादी के चक्कर में उसे फँसा देते हैं। यदि वह भक्ति, सत्संग वैराग्य करना चाहे तो नाना भाँति विघ्न करते हैं। यह कितना बड़ा अज्ञान है ! अतः जो कल्याण चाहे, उसे इस विवाह-शादी के चक्कर से सदैव के लिये मुक्त होना चाहिये।

३०—संसार-वृक्ष।

बिनहिं बीज तरु एक भव, शाखा दल फल फूल।
को बरणे अतिशय अमित, सब विधि अकल अतूल।।७२।।

बिना बीज के ही संसार रूपी एक वृक्ष है, जिसमें पृथ्वी आदि तत्त्व डगालियाँ, शब्दादिक पाँच विषय पत्ते, विषय-वासनायुक्त शुभाशुभ कर्म फूल, और सुख-दुख फल हैं। सब प्रकार से अकल (विचित्र), अतुलनीय, अत्यन्त अपार संसार का कौन वर्णन कर सकता है ? ।।७२।।

शुक पिक मुनिगण बुध बिबुध, फल आश्रित अति दीन।
तुलसी ते सब विद रहित, सो तरु तासु अधीन ।।७३।।

पण्डित, देवता और मुनिगण रूप शुक-पिक संसार रूपी वृक्ष के विषय-सुख रूप फल के आश्रित होकर अत्यन्त दीन हो रहे हैं। तुलसी दास जी कहते हैं कि ये सब (पण्डित, देवता, मुनिगण) संसार की वास्तविकता से विद रहित (ज्ञान हीन) हैं, यह संसार रूपी वृक्ष तो मनुष्य के ही अधीन है, सुख मानकर पकड़ रक्खा है, दुःख रूप समझ कर त्याग दे, तो कौन बाँध सकता है ? ।। ७३ ।।

३१—शून्य की उपासना निष्फल।

शशिकर स्रग रचना किये, कत शोभा सरसात।
स्वर्ग सुमन अवतंश खल, चाहत अचरज बात ।।७४।।

शशिकर=चन्द्रमा की किरणें। स्रग=माला। स्वर्ग-सुमन=आकाश के फूल। अवतंश=झूठा। खल=निश्चय।

चन्द्रमा की किरणों में आकाश के फूल पिरोकर और माला बनाय धारण करके, शोभा बढ़ाना चाहता है, तो कैसे हो। यह निश्चय ही झूठा व्यवहार है; परन्तु यह मन आश्चर्य की बात करना चाहता है।

भाव—चन्द्रमा मन है, आकाश के फूल निराकार-शून्य की उपासना है। मन को शून्य में लगाने से वह शान्त न होगा। सबसे हटाकर सद्वस्तु (स्व-स्वरूप चैतन्य) में लगाओ।

३२—अनधिकारी को उपदेश न दो।

तुलसी बोल न बूझई, देखत देख न जोय।
तिन शठ को उपदेश का, करब सयाने कोय ॥ ७५ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं, जो बात को नहीं समझता, और देखते हुए भी अनदेख करता है। ऐसे मूर्ख को कोई बुद्धिमान पुरुष क्या उपदेश देगे ? ॥ ७५ ॥

जो न सुनै तेहि का कहिय, कहा सुनाइय ताहि।
तुलसी तेहि उपदेशही, तासु सरिस मति जाहि ॥७६॥

जो उपदेश नहीं सुनना चाहता, उसके लिये क्या कहना, उसको क्या उपदेश सुनाना ? तुलसीदास जी कहते हैं कि ऐसे मतिमन्द को वही उपदेश करेगा, जिसकी बुद्धि भी उसी के समान मन्द होगी।

३३—प्रमाद-वश अपनी ही बात न समझ पाना।

कहत सकल घट राममय, तौ खोजत केहि काज।
तुलसी कह यह कुमति सुनि, उर आवत अति लाज ॥७७॥

महापुरुष कहते हैं कि, "सबके हृदय में राम है" फिर लोग बाहर किसलिये खोजते हैं ? तुलसीदास जी कहते हैं, कि यह कुबुद्धि की बात सुनकर, हमें बड़ी लज्जा लगती है ॥ ७७ ॥

भाव—हृदय में निवास करने वाला चेतन ही राम है, बाहर खोजने का प्रयास करना, कुबुद्धि का लक्षण है।

३४—दम्भी-गुरुओं की लीला।

अलख कहैं देखन चहैं, ऐसे परम प्रवीन।
तुलसी जग उपदेशहीं, बनि बुध अबुध मलीन ॥ ७८ ॥

कहते हैं वह अलख है, परन्तु देखना चाहते हैं, ऐसे परम बुद्धिमान हैं। तुलसीदास जी कहते हैं, कि जगत् में मलीन विषयी अज्ञानी लोग, पण्डित बनकर उपदेश देते और भगवान के दर्शन कराते फिरते हैं ॥ ७८ ॥

हहरत हारत रहित बिद, रहत धरे अभिमान।
ते तुलसी गुरु आव नहिं, कहि इतिहास पुरान ॥७९॥

ज्ञान से रहित, हार करके हाय-हाय करते हैं, (विषयों में पचते हैं) परन्तु बड़ेपने का अभिमान धारण किये रहते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं, कि ऐसे लोग, पुजाने के लिए गुरु बनकर घूमते हैं, जड़-चेतन-निर्णय तथा स्वरूपज्ञान विषयक बातें तो दूर रहीं, सरल इतिहास-पुरान कहना भी नहीं आता ! (गुरु महाराज को पूजा-सेवा से प्रयोजन है, शिष्यगण चाहे मांस-मद्यादि ही सेवन करें, रोकते नहीं, ऐसे गुरु—हर शिष्य धन शोक न हरई। सो गुरु घोर नरक महँ परई ॥) ॥ ७९ ॥

निज नैनन दीखत नहीं, गही आँधरे बाँह।
कहत मोह वश तेहि अधम, परम हमारे नाँह ॥ ८० ॥

अपने नेत्रों से दिखता नहीं, फिर गन्तव्य स्थान पर पहुंचने के लिए एक अन्धे का हाथ पकड़ लिया। वह नीच (छोटा अन्धा) अज्ञान-वश उसे (बड़े अन्धे को) कहता है कि ये हमारे परम स्वामी (गुरु पथ-प्रदर्शक हैं ॥ ८० ॥

दृष्टान्त—एक मनुष्य को रन्तौंधी होती थी। वह अपने घर पहुं-

चने के लिये एक अन्धे का हाथ पकड़ा। मार्ग में एक कूआँ था। दोनों उसी में गिरकर मर गये।

भाव–संसारी जीव, माया प्रपंच-वश, विवेक-विचार से हीन होने से, अन्धे हैं। वे अपने कल्याण के लिये गुरु करने चले, तो उन्हे जो गुरु मिले और अधिक अन्धे, विवेक-विचार-हीन, विषयासक्त-प्रपंचासक्त! अतः गुरु-शिष्य दोनों चौरासी चक्कर की खाईं में गये।

गगन वाटिका सींचि हैं, भरि-भरि सिन्धु तरंग।
तुलसी मानहिं मोद मन, ऐसे अधम अभंग॥ ८१॥

मनोमय तरङ्गवान् सागर से कल्पित वाणी रूपी पानी, जिह्वा-पात्र में भर-भर कर, आकाश की कल्पित फुलवारी लोग सींचते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं, कि इसी में वे लोग मन में प्रसन्नता मानते हैं (विवेक-विचार नहीं धारण करते) ऐसे अटूट अधम हैं॥ ८१॥

३५—सन्तोष ही रामरूप है।

जहाँ तोष तहँ राम हैं, राम तोष नहिं भेद।
तुलसी पेखि गहत नहीं, सहत विविध विधि खेद॥८२॥

सांसारिक समस्त वासनाओं को त्यागकर जहाँ सन्तोष आया वहीं जानों राम (आराम-शान्ति) है। राम और सन्तोष में भेद नहीं है। तुलसीदास जी कहते हैं, कि ऐसा विवेक से देखकर मनुष्य सन्तोष नहीं धारण करता (बाहर राम की खोज में) अनेकानेक कष्ट सहता है॥ ८२॥

गो धन गज धन वाजि धन, और रतन धन खान।
जब आवै सन्तोष धन, सब धन धूरि समान॥८३॥

गौ, हाथी, घोड़े और नाना रत्नों की खानि धन अवश्य माने जाते हैं। परन्तु जब सन्तोष रूपी धन मिल गया, तब उपर्युक्त सब धन धूल के समान हो गये॥ ८३॥

कथि रति अटत विमूढ़ लट, घट उद्घटत न ज्ञान।
तुलसी रटत हटत नहीं, अतिशय गति अभिमान॥८४॥

कथि = कथन। रति = आसक्ति। अटत = भ्रमत। लट = लटकता-फंसता। घट = अन्तःकरण। उदघटत = उत्पन्न।

(सन्तोष-प्राप्ति-बिना) स्त्री-पुत्र, धन-घर तथा विषय-वासनाओं में आसक्त है, स्त्री आदि के कथन-अनुसार मूढ़ विषय में लटका हुआ संसार में भ्रमता है, अन्तःकरण में ज्ञान नहीं उत्पन्न होता। तुलसी दासजी कहते हैं, कि केवल मुख से राम-राम रटता या ज्ञान की कोरी बातें करता है, अतिशय अभिमान् को प्राप्त है, उससे तनिक भी हटता नहीं ॥ ८४ ॥

सर्व दुराचरणों का परित्याग करके सर्व सदाचारों को धारण करना तथा विषयों की सर्व आसक्तियों को त्याग कर अपने आप ही में सन्तोष धारण करना—यही सर्व सिद्धान्तों का सार है; और यही राम की प्राप्ति है। राम कहीं बाहर नहीं है कि वह कभी मिलेगा। हृदय-निवासी अपने आप चेतन ही राम है। जगत् से विमुख होकर उसमें सन्तुष्ट होना चाहिये, सन्तोष और राम दो वस्तु नहीं।

३६—गुरु-कृपा से सत्-असत् की परख।

सुनै वरण मानै वरण, वरण विलग नहि ज्ञान।
तुलसी गुरु प्रसाद बल, परत वरण पहिचान ॥८५॥

वर्णों से बने शब्द सुने जाते हैं, शब्द ही माने जाते हैं, शब्दों से पृथक ज्ञानोपदेश नहीं होता; (ग्रन्थों में सत्-असत् शब्द मिले हैं) तुलसीदास जी कहते हैं, कि सद्गुरु की कृपा-बल से सत्-असत् शब्दों की परख होती है, (यथार्थ गुरु-बिना सब भटक रहे हैं) ॥८५॥

३७—जीव अपनी कृत्रिमता में भूला।

विटप बेलि गन बाग के, माली कारण जान।
तुलसी ताविधि विद बिना, कर्ता राम भुलान ॥ ८६ ॥

वृक्ष—लतादि समूह युत बाग के कारण माली को ही जानो। तुलसीदास जी कहते हैं, कि इसी प्रकार स्त्री-पुत्रादि संसार रूप बाग

लगाकर, स्वरूपज्ञान बिना, कर्ता जीव अपने राम स्वरूप को भुला है ॥ ८६ ॥

३८—जीव ही कर्ता और कर्म फल भोक्ता है।

कर्तबही सो कर्म है, कह तुलसी परमान।
करनहार करतार सो, भोगै कर्म निदान ॥ ८७ ॥

तुलसीदास जी सत्य कह रहे हैं, कि भले-बुरे कर्तव्य से ही, कर्म-संस्कार बनते हैं। करने वाला करतार जीव ही, उन कर्म-फलों को अन्त में भोगता है ॥ ८७ ॥

३९—गुरु-बिना जीव भटकता है।

तुलसी लटपद ते मटक, अटपट अपि नहिं ज्ञान।
ताते गुरु उपदेश बिनु, भरमत फिरत भुलान ॥ ८८ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं, कि नीच कर्म करने से जीव चंचल है, और ज्ञान-बिना निश्चय करके कर्मों में अटका (फँसा) है। अतएव यथार्थ सद्गुरु के उपदेश बिना स्व-स्वरूप को भूलकर भटकता फिरता है ॥ ८८ ॥

ज्यों बरदा बनिजार के, फिरत घनेरे देश।
खांड़ भरे भुस खात हैं, बिन गुरु के उपदेश ॥ ८९ ॥

जैसे व्यापारी के बैल पीठ पर खाँड़ (उत्तम मीठा) लादे हुए, तथा स्वयं भूसा खाते हुए, बहुत से देशों में व्यापारी के साथ घूमते-फिरते हैं। इसी प्रकार गुरु के उपदेश बिना, विद्या का बोझ लादकर भी, विद्वान लोग विषय-वासना रूपी भूसा खा रहे हैं ॥ ८९ ॥

४०—मन में अनीति आने पर सार ग्राही-बुद्धि दूर हो जाती है।

बुध्या बारत अनयपद, श्वपि, न पदारथ लीन।
तुलसी तेहि रासभ सरिस, निज मन गनहिं प्रवीन ॥ ९० ॥

बुध्या = बुद्धि से। बारत = दूर। अनयपद = अनीतपद। शु = अच्छा पदार्थ। अपि = निश्चय, भी।

मनमें अनीत आने पर सार-ग्राही बुद्धि दूर हो जाती है, अतः निश्चय ही शुभ पदार्थ में मन नहीं लीन होता। तुलसीदास जी कहते हैं कि जिनका मन सत्यस्थ नहीं है, वे गदहे सदृश हैं, वे अपने मनमें अपने को बुद्धिमान भले मानते रहें; परन्तु अपने मुंहे मियाँ मिट्ठू बनने से काम नहीं चलता ॥ ९० ॥

४१—मोक्ष के लिये सत्य ज्ञान आवश्यक ।

बिन पाये परतीत अति, करै यथारथ हेत।
तुलसी अबुध अकाश इव, भरि भरि मूठी लेत ॥ ९१ ॥

सत्य—प्रयोजन (मोक्ष) का ज्ञान बिना प्राप्त हुए (यह दुःखी अज्ञानी जीव जहाँ-तहाँ नाना देवी-देवादि यन्त्र-मन्त्रों तथा नाना कल्पित वाणियों में) अत्यन्त विश्वास उसी प्रकार कर लेता है, जैसे कोई अज्ञानी पूरे आकाश को अपनी मूठी में भर लेना चाहता हो ॥९१

भाव—मोक्ष-प्राप्ति के लिये सत्संग में स्व-स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करो। जहाँ-तहाँ कल्पित बातों में विश्वास करने से काम नहीं चलेगा।

४२—आचरण बिना पाण्डित्य काम नहीं देता ।

काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि मन में खान।
का पण्डित का मूरखा, दोनों एक समान ॥९१॥

काम, क्रोध, मद लोभ आदि जब तक हृदय में घर किये बैठे हैं। तब तक क्या पंडित क्या मूर्ख दोनों बराबर हैं ॥ ९२ ॥

कीर सरिस वाणी पढ़त, चाखन चाहत खाँड़।
मन राखत बैराग्य महँ, घर में राखत राँड़ ॥९३॥

सुग्गा के समान वाणी रटते हैं, मलाई-मालपूआ सदा खाना चाहते हैं। मन में तो बड़ा अभिमान है कि मैं वैराग्यवान् महात्मा हूँ, परन्तु घर में राड़ (परस्त्री) रखते हैं, (ऐसे पतित वेषधारी नरक में जाते हैं) ॥ ९३ ॥

काह भयो बन बन फिरे, जो बनि आयो नाहिं।
बनते बनते बनि गयो, तुलसी घर ही माहिं ॥९४॥

घर त्याग कर वन-वन घूमने से क्या हुआ ? यदि विवेक-वैराग्य-भक्ति आदि न बन सका। तुलसीदास जी कहते हैं, कि यदि (सत्संगत-भक्ति) करते-करते घर ही में बन गया, (तो उस निष्प्रयोजन आवरण-हीन घुमक्कड़-वेष-धारी से सौ गुणा अच्छा है।)॥ ६४ ॥

४३—जैसी वासना, वैसे नाम-रूप।

जो गति जानै वरण की, तन गति सो अनुमान।

वरण बिन्दु कारण यथा, तथा जान नहिं आन ॥ ६५ ॥

जैसे वर्णों (अक्षरों) की दशा जानी जाती है, वैसे ही तन की दशा का अनुमान करना चाहिये। जैसे फारसी के अक्षरों में बिन्दु बदल जाने से, वर्ण बदल जाता है; इसी प्रकार वासना रूप बिन्दु के बदल जाने से जीव के शरीर के नाम रूप बदल जाते हैं (जैसी वासना, वैसी देह प्राप्त होती है) (अथवा ज्ञान की वासना से ज्ञानी, विषयकी वासना से विषयी, वैराग्य की वासना से वैराग्यवान् नाम पड़ता है) दूसरी भाँति नहीं, ऐसा जानो ॥ ६५ ॥

वर्ण योग भव नाम जस, जानु भरम को मूल।

तुलसी करता है तुही, जान मान जनि भूल ॥६६॥

बिन्दु के योग से वर्ण का जैसे दूसरा नाम हो जाता है, वैसे वासना रूपी बिन्दु से शरीर का दूसरा नाम हो जाता है, (जैसी वासना उठी, वैसा कर्तव्य हुआ और कर्तव्य-अनुकूल योगी-भोगी, रागी-वैरागी, मूर्ख-पण्डित नाम पढ़े,)। इन सर्व नामों को भ्रम का मूल समझो। तुलसीदास जी कहते हैं, कि हे जीव ! इन नामों का कर्ता-धर्ता तू ही है, इन्हें अपने से पृथक् जान, इनमें मानन्दी करके भूले नहीं (कि मैं ज्ञानी, त्यागी, वैरागी, पण्डित आदि) ॥ ६६ ॥

नाम जगत सम समुझ जग, वस्तुन करि चित चैन।

बिन्दु गये जिमि गैन ते, रहत ऐन के ऐन ॥६७॥

हमारी बात पर चित्त दो, सुनो ! जितने नाम (जाति) हैं,

जगत के समान ही सार-हीन समझो; क्योंकि जगत् की वस्तुओं के अनुसार नाम पड़ते हैं, (राज्य-प्राप्त होने पर राजा, धन पाने पर धनी)। फारसी में ऐन अक्षर के शीश पर विन्दु रख देने से गैन हो जाता है, और विन्दु हटा दो तो ऐन-का-ऐन ही रह जाता है, (मुसलमानी तन्त्रों में ऐन अक्षर शुभ मानते और गैन अक्षर अशुभ)। (इसी प्रकार अपना शुद्ध स्वरूप चैतन्य अखण्ड एकरस नित्य सन्तुष्ट है। परन्तु इसके शिर पर विषयरूप विन्दु लग गया है, इससे अमङ्गल है। यदि विषय-विन्दु का त्याग करे, तो शुद्ध स्वरूप मंगलमय ही जीव रह जाय।

आपुहि ऐन विचार विधि, सिद्धि विमल मतिमान।
आन वासना विन्दु सम, तुलसी परम प्रमान ॥६८॥

मंगलमय ऐन अक्षर के समान हे जीव ! तू अपने आप करने योग्य पर विचार करने वाला, कल्याण-कार्य-सिद्धि करने वाला, निर्मल बुद्धिमान ज्ञानवान है। तुलसीदास जी परम प्रमाण की बात कहते हैं, कि अपने से अतिरिक्त विषयों की वासनारूपी विन्दु के मिलने से तू ऐन का गैन—शुद्ध से मलीनवत् बना है। वासना त्याग कर तू मुक्त रूप है ॥ ९८ ॥

४— केवल नाम रटने से काम नहीं चलता।

धन धन कहे न होत कोउ, समुझि देखि धनवान।
होत धनिक तुलसी कहत, दुखित न रहत जहान ॥६६॥

समझ करके देखो, धन-धन कहने से कोई धनवान नहीं होता। तुलसीदास जी कहते हैं, कि यदि धन-धन कहने से लोग धनी होते, तो संसार दुखी न रहता ॥ ६६॥

भाव— केवल ज्ञान-वैराग्य की बात करने से या केवल राम-नाम जपने से कल्याण नहीं होता। राम क्या है ? यह समझना चाहिये कि हृदय-निवासी बोलता ही राम है। और विषयासक्ति की निवृत्ति के लिये विवेक-वैराग्य धारण करना चाहिये।

४५—विषय-वासना निन्दा करती है।

जाके उर वर बासना, भई भास कछु आन ।
तुलसी ताहि विडम्बना, केहि विधि कथहिं प्रमान ॥१००॥

कल्याण-साधन त्याग कर, जिनके हृदय में किसी दूसरे विषय का भास खड़ा हुआ, और प्रबल वासना उसी की हो गयी। तुलसीदासजी कहते हैं कि उसका अपमान जो जगत् में होता है, उसे किस प्रकार प्रमाण देकर बताया जाय ? ॥ १०० ॥

४६—भव-रोग-नाश के उपाय।

रुज तन भव परचै विना, भेषज कर किमि कोय ।
जान परै भेषज करै, सहज नाश रुज होय ॥१०१॥

शरीर में उत्पन्न हुए रोगके परिचय बिना, कोई कैसे दवाई करे ? जब ठीक से रोग जान पड़े, तब दवाई करने पर, सहज ही रोग नष्ट हो जायेगा ॥१०१॥

भाव—भोगों को भोगकर, सब जीव इच्छा-रोग को बढ़ा रहे हैं। जब इच्छा को रोग जाना जाय, तब भोगों का त्याग करके जीव इच्छा-रोग से मुक्त होवे।

मानस व्याधि कुचाह तव, सद्गुरु वैद्य समान ।
जासु वचन अल बल अवश, होत सकल रुज हान ॥१०२॥

हे जीव ! तेरी बुरी चाहना ही मानसिक व्याधि है, यथार्थ सद्-गुरु वैद्य के तुल्य हैं। उनके वचन श्रेष्ठ शक्तिशाली (औषध) हैं, उससे अवश्य ही सब मानसिक रोग समाप्त हो जायँगे, और जीव स्ववश हो जायगा ॥१०२॥

रुचि बाढ़ै सतसंग महँ, नीति क्षुधा अधिकाय ।
होत ज्ञान बल पीन अल, घृजिन विपति मिटि जाय ॥१०३॥

फिर तो सत्संग में प्रेम बढ़ता गया और नीति (सदाचार) की भूख बढ़ती गयी। ज्ञान बल पुष्ट होकर परिपूर्ण हो गया और सारे मानसिक रोग रूपी विपत्तियाँ मिट गयीं ॥१०३॥

४७—सत्संग-कुसङ्ग से ज्ञान-अज्ञान की वृद्धि ।

शुक्ल पक्ष शशि स्वच्छ भो, कृष्ण पक्ष द्युति हीन ।
बढ़त घटत विधि भाँति बिबि, तुलसी कहहिं प्रवीन ॥१०४॥
सत्संगत सित पक्ष सम, असित असंत प्रसंग ।
ज्ञान आप कहँ चंद्र सम, तुलसी वदत अभंग ॥१०५॥

शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा उज्ज्वल होता जाता है और कृष्ण पक्ष में प्रकाश-हीन होता जाता है। तुलसीदासजी कहते हैं, कि बुद्धिमानों का मत है, कि ज्ञान-अज्ञान के घटने-बढ़ने के दो प्रकार के हेतु हैं ॥१०४॥ सत्संग को शुक्ल पक्ष और विषयी लोगों की संगत कृष्ण पक्ष-वत् समझो और अपने को चन्द्रमावत् समझो, इस प्रकार तुलसीदास जी अटल बात कहते हैं ॥१०५॥

भाव—सत्संग से जीव शुद्ध होता है और कुसंग से मलीन होता है। अतः सदैव सत्संग करो।

४८—तीर्थ-वर्णन ।

तीरथ पति सत्संग सम, भक्ति देव सरि जान ।
विधि निषेध गति राम की, तरनि सुता अनुमान ॥१०६॥

सत्संग को तीर्थराज-प्रयाग, भक्ति को गंगा जानो। राम-(स्वरूप-ज्ञान) प्राप्ति की विधि-निषेध सम कर्म-कथा यमुना जी मानो ॥१०६॥

बर मेधा मानहु गिरा, धीर-धरम निग्रोह ।
मिलन त्रिवेणी मल हरणि, तुलसी तजहु विरोध ॥१०७॥

ज्ञान को धारण करने वाली श्रेष्ठ मेधा—(धारणा) शक्ति ही सरस्वती हैं, धर्म में अटल रहना निग्रोह (अक्षयवट) है। भक्ति, कर्म, ज्ञान—तीनों के सहित विवेक पूर्वक जीवन व्यतीत करना, पाप हारिणी त्रिवेणी हैं, तुलसीदासजी कहते हैं, विरोध त्याग कर ऐसे तीर्थ-राज का सेवन करो ॥१०७॥

सहुझब मन मज्जन बिसद, मल अनीति गइधोइ ।
अवशि मिलन शंसय नहीं, सहज राम पद होइ ॥१०८॥

उपर्युक्त निर्णय को समझकर, ज्ञान,[1] भक्ति,[2] कर्म,[3] रूपी त्रिवेणी में स्नान करके; मन उज्जवल हो गया, और अनीति रूप मल धो गया। सहज ही रामपद (स्व-स्वरूप की स्थिति को प्राप्त हो गया, शंसय नहीं है ॥ १०८ ॥

क्षमा बिमल बाराणसी, सुर अपगा सम भक्ति ।
ज्ञान विशेश्वर अति विशद, लसत दया सह शक्ति ॥१०९॥

शक्ति रहते हुए भी अपराधी से बदला लेने की भावना तक न होना रूप निर्मल क्षमा ही काशी हैं, (सद्गुरु-सन्तों की) भक्ति ही गंगा नदी है। स्वरूप-ज्ञान ही अत्यन्त शुद्ध विश्वेश्वर नाथ हैं, तिनके साथ दया रूपी पार्वती विराजती हैं ॥ १०९ ॥

भाव—क्षमा, भक्ति, दया के सहित ज्ञान ही कल्याणमय है।

बसत क्षमा ग्रह जासु मन, वाराणसी न दूरि ।
बिलसति सुरसरि भक्ति जहँ, तुलसी नय कृत भूरि ॥११०॥

जिसका मन क्षमा के बीच बसता है, उसको काशी दूर नहीं है। तुलसीदासजी कहते हैं, वहाँ नीतियुत विपुल शुभ कर्ममय भक्ति रूप गंगा बिलसती हैं ॥ ११० ॥

४९—भूत भविष्य की चिन्ता त्यागकर वर्तमान में सम्हलो ।

गये पलटि आवै नहीं, है सो करु पहिचानु ।
आजु जेहि सोइ कालिह हैं, तुलसी भर्म न मानु ॥१११॥

जो समय बीत गया, वह उलट कर नहीं आ सकता, जो समय है, उसमें सत्य को परखो। तुलसीदासजी कहते हैं, मन में भ्रम न लाओ, जो आज है, वही कल है (आज-कल मत करो, शीघ्र सम्भालो) ॥१११॥

१—स्व-स्वरुप ज्ञान । २—गुरु-सन्तों की भक्ति । ३—निष्काम शुभ कर्म ।

वर्तमान आधीन दोउ, भावी भूत विचार।
तुलसी शंसय मन न करु, जो हो सो निरुवार ॥ ११२॥

विचार करो। भूत भविष्य दोनों वर्तमान के अधीन हैं, (वर्तमान में विवेक वैराग्य का पुरुषार्थ होने पर भूत पूर्व की एकत्र वासना क्षीण हो जायगी और भविष्य में मन में विषयों की ओर खिचाव न होगा) तुलसीदासजी कहते हैं, कि मन में शंसय न करो, जितना समय वर्तमान है, उसमें अपने उलझे मन को सुलझाओ (कल्याण, साधन करने के लिये वर्तमान समय पर्याप्त है।

५०—कर्म-बन्धनों का ज्ञान और निवृत्ति।

आपहि बाँधत आपु हठि, कौन छुड़ावत ताहिं।
सुखदायक देखत सुनत, तदपि सुमानत नाहिं ॥११३॥

विषय-मोह में जीव अपने आप हठ पूर्वक अपने को बाँधता है, फिर उसे दूसरा कौन छुड़ावे। यद्यपि सुख-दायक (सत्संग, त्याग, वैराग्य, मन-निरोध) देखता सुनता है, तद्यपि उसे नहीं मानता (विषय-धार में बहा जाता है) ॥ ११३ ॥

जौन तार ते अधम गति, उर्ध्व तौन गति जात।
तुलसी मकरी तंतु इव, कर्म न कबहुँ नशात ॥११४॥

जिस तार से मकड़ी नीची गति जाती है, उसी तार से ऊपर गति को भी जाती है। तुलसीदासजी कहते हैं, कि मक-तारवत् शुभ कर्म से जीव ऊपर (उत्तम गति) जाता है, अशुभ कर्म से नीचे (बुरी) गति को प्राप्त होता है। इस प्रकार (बिना स्वरूप ज्ञान के) कर्म कभी नष्ट नहीं होते ॥ ११४ ॥

जहाँ रहत तहँ सह सदा, तुलसी तेरो बानि।
सुधरे विधि वश होइ जब, सत संगति पहिचानि ॥११५॥

तुलसीदास जी कहते हैं, हे मन! तेरा यह स्वभाव है कि जैसा कर्म करता, वैसा स्वभाव बनता और स्वभावानुसार कर्म करता है। जहाँ

रहता, वहाँ स्वभाव-सहित रहता और सुख-दुःख भोगता रहता है। यह तभी सुधरेगा, जब संयोगवश या सौभाग्य से सत्संग मिले और उसमें सत्य-स्वरूप की परख हो ॥ ११५ ॥

५१—जड़ चेतन निर्णय।

गन्ध शीत अपि उष्णता, सबहि विदित जग जान।
महि जल अनल सो अनिल गति बिन देखे परमान ॥११६॥
इन महँ चेतन अमल अल, बिलखत तुलसी दास।
सो पद गुरु उपदेश सुनि, सहज होत परकाश ॥११७॥

गन्ध, शीत, उष्णता, (और कोमलता)—निश्चय करके सर्व-विदित हैं, जगत जानता है, कि पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन के गुण—धर्म हैं। विवेक- नेत्रों से बिना देखे यह सत्य कैसे माना जाय कि इसके परे चेतन नहीं है, (पृथ्वी, जल, वायु—ये जड़ हैं एक-से-एक विरोधी हैं) ॥ ११६ ॥ इन तत्त्वों से निर्मित देहों में चेतन है, वह स्वरूप से निर्मल और श्रेष्ठ है, परन्तु भूल-वश, दुखी है। सद्गुरु का उपदेश सुन-कर उस चैतन्यपद का सहज में प्रकाश (ज्ञान) होता है ॥११७॥

यहि विधि ते वर बोध यह, गुरु प्रसाद कोउ पाव।
है ते अल तिहुँ काल महँ, तुलसी सहज प्रभाव ॥११८॥

(पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु से अपना चेतन स्वरूप पृथक है) इस प्रकार से यह श्रेष्ठ बोध गुरु की कृपा से कोई प्राप्त करता है। वह तीनों काल में श्रेष्ठ, चैतन्य स्वरूप, समर्थ, स्वाभाविक ज्ञान प्रभाव-पूर्ण है ॥ ११८ ॥

५२—सच्चा स्वार्थ क्या है ?

सब स्वारथ स्वारथ रटत, तुलसी घटत न एक।
ज्ञान रहित अज्ञान रत, कठिन कुमन कर टेक ॥११९॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि सब जीव धन, घर, पृथ्वी, स्त्री-पुत्र,

विषय-भोग की प्राप्ति रूप स्वार्थ-स्वार्थ रट रहे हैं; परन्तु किसी की एक भी कामना पूरी नहीं होती। ज्ञान से रहित जीव अज्ञान में आसक्त हैं, कठोर बुरे मन की हठता में पड़े हैं ॥११९॥

स्वारथ सों जानहु सदा, जासो विपति नशाय।

तुलसी गुरु उपदेश बिन, सो किमि जानो जाय ॥१२०॥

सदैव उसी को अपना वास्तविक स्वार्थ समझो, जिससे राग-द्वेषादि मानस व्याधि रूप विपत्ति नष्ट हो। तुलसीदासजी कहते हैं, कि गुरु के उपदेश बिना वह (यथार्थ-स्वार्थ ज्ञान-वैराग्य) कैसे जाना जा सके ? ॥१२०॥

५३—जीव ही कर्ता है।

कारण कारज जान तो, सब काहू परमान।

तुलसी कारण कार जो, सो तैं अपर न आन ॥१२१॥

जो कारण-कार्य को जानता है, सबको प्रमाणित (सिद्ध) करता है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं, वह कारण-कार्य का ज्ञाता तूही है, (क्योंकि तू कर्ता है) तेरे से भिन्न दूसरा नहीं है, (जैसा करे, वैसा भरे) ॥१२१॥

बिन करता कारज नहीं, जानत हैं सब कोइ।

गुरु मुख श्रवण सुनत नहीं, प्राप्ति करन विधि होइ ॥१२२॥

बिना कर्ता के कार्य सिद्ध नहीं होता, यह सब कोई जानते हैं, (कर्ता जीव कल्याण-साधन न करे, तो कल्याण-कार्य कैसे हो ?) मनुष्य गुरुमुख सत्योपदेश कानों से सुनता नहीं, फिर किस प्रकार कल्याण प्राप्त हो ॥१२२॥

करता कारण कारजहु, तुलसी गुरु परमान।

लोपत कर्ता मोह वश, ऐसो अबुध मलान ॥१२३॥

गोस्वामी जी कहते हैं, कि गुरु के शब्द प्रमाण से कर्ता (नाना जीव) कारण (पृथ्वी आदि तत्त्व) कार्य (पंच-विषय पदार्थ) तीन

हैं। परन्तु कर्ता-चेतन जीव, जड़ कारण-कार्य में अज्ञान वश लुप्त हो रहा है-मिल रहा है, ऐसा बुद्धि-हीन और मलीन हो रहा है ॥१२३॥

अनिल सलिल विनियोग ते, यथा बीचि बहु होय।
करत करावत नहिं कछुक, करता कारण सोय॥१२४॥

(केवल वायु से तरंग नहीं उठता, न केवल जल से तरंग उठता है, परन्तु) पानी में वायु का संयोग होने से जैसे बहुत तरंग उठते हैं। इसी प्रकार न केवल जीव से देह बनती है, और न केवल जड़ तत्त्व से देह बनती है; ये दोनों अकेले में देह रचते-रचाते नहीं। परन्तु कर्ता जीव, कारण तत्त्व, कर्म-वश एकत्र होकर (उपर्युक्त वायु-जल-तरंग वत्) देह बनते हैं ॥१२४॥

स्वेदज जौन प्रकार ते, आप करै कोउ नाहिं।
भये प्रगट तेहि के सुनौ, कारण विलोकत ताहिं॥ १२५॥

जिस प्रकार से पसीने आदि से होने वाले बिना माँ-बाप के देहधारी जीव कर्म-वश जड़-तत्त्वों में अपने आप देह धर लेते हैं, दूसरा कोई उन्हें जन्माता नहीं। सुनो! उन कीड़ों के प्रकट होने पर कौन उनको देखता है कि अब ये प्रकट हो रहे हैं ॥१२५॥

भाव—कर्मवश जड़तत्त्वों के सम्बन्ध में कर्ताजीव स्वाभाविक देह धरता रहता है। इसको कोई दूसरा देह नहीं धराता। मनुष्य-शरीर में कर्म का त्याग करे, तो देह धरने के चक्कर से मुक्त हो जाय।

५४—सबसे समता का बर्ताव करो।

भये विषमता कर्म महँ, समता किये न होइ।
तुलसी समता समुझ कर, सकल मान मद धोइ॥१२६॥

सब जीवों के कर्मों में ऊँच-नीच होने से विषमता है (कोई गोरा, कोई काला, कोई बुद्धिमान, कोई निर्बुद्धि, कोई संत, कोई असंत) अतएव तुम्हारे समता करने से सब, ब्राह्य अंगों में बराबर नहीं होंगे। गोस्वामी जी कहते हैं, कि हृदय में सब जीवों का स्वरूप समान

जानकर, स्वजाति भाव से सबसे समता रखो और सम्पूर्ण मान मद रूप मैल को धो डालो ॥१२६॥

समहित सहित समस्त जन, सुहृद जान सब काहु ।
तुलसी यह मत धारु उर, दिन प्रति अति सुख लाहु ॥१२७॥

जगत् के समस्त जीवों के प्रति समान हित की भावना के सहित, सबको मित्र रूप से जानो। गोस्वामी जी कहते हैं, कि यह मत हृदय में धारण करो, फिर दिन प्रतिदिन अत्यन्त सुख को प्राप्त होओगे ॥ १२७ ॥

यह मन महँ निश्चय धरहु, है कोइ अपर न आन ।
किनक करत विरोध हठि, तुलसी समुझ प्रमान ॥१२८॥

मनमें यह निश्चय पूर्वक धारणा बना लो कि "दूसरा और कोई नहीं है" सब हमारे स्वजाति चेतन जीव हैं। गोस्वामी जी कहते हैं, कि तू किससे हठ पूर्वक विरोध करता है? सबको अपने समान समझना चाहिये—इसके ऊपर समस्त मत-मजहबों के विपुल प्रमाण भरे पड़े हैं ॥१२७॥

५५—बोध का स्वरूप और उपाय ।

महि जल अनल सो अनिल नभ, तहाँ प्रकट तव रूप ।
जानि जाय वर बोध ते, अति शुभ अमल अनूप ॥१२९॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश—जड़ तत्त्वों से रचित इस देह में तुम्हारा चैतन्य स्वरूप प्रकट है, (हड्डी, त्वचा, रोम, मांस, नख—ये पृथ्वी के अंश। लार, मूत्र, वीर्य, रक्त, पसीना—ये जल के अंश। भूख, प्यास, आलस्य, निद्रा, जमुहाई—ये अग्नि के अंश। प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान (प्राणमय)—ये वायु के अंश। शरीर में जहाँ तक शून्य भाग, वह आकाश। परन्तु इन सबों से पृथक, जो इन जड़ सामग्रियों को जानता-मानता है, वह मैं चैतन्य, इस प्रकार सर्व जड़ पदार्थों से अपने चेतन स्वरूप को पृथक समझना—यह बोध का स्वरूप है)। उपर्युक्त श्रेष्ठ बोध से ही जाना जाता है

कि अपना स्वरूप अतिशय मंगलमय (सर्वापत्ति-रहित) निर्मल और दृश्य से विलक्षण है ॥१२६॥

जो पै अकस्मात ते, उपजे बुद्धि विशाल।
ना तो अति छल हीन ह्वै, गुरु सेवन कछुकाल ॥१३०॥

यदि (संसार के नाना घटनाओं को देखकर) बिना कारण एकाएक अपने आप को शोधने के लिये विशाल बुद्धि उत्पन्न हो जाय, तो परीक्षा करते-करते किसी विरले महापुरुष को शुद्ध स्व-स्वरूप का बोध हो सकता है। अन्यथा सर्वथा छल-कपट से रहित होकर विवेकी सद्गुरु की कुछ काल सेवा करे, तो स्व-स्वरूप का यथार्थ बोध हो सकता है ॥१३०॥

दो प्रकार से बोध होने का हेतु सद्गुरु श्री कबीर साहेब ने भी कहा है—

बहु बन्धन से बाँधिया; एक बेचारा जीव।
की बल छूटे आपने, किरे छुड़ावे पीव[1] ॥

स्वयं बोध होने का हेतु श्रीमद्भागवत में इस प्रकार बताया है—

प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्वविचक्षणाः।
समुद्धरन्ति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात् ॥
(भागव ११ । ७ । १९)

अर्थात्—'श्रीकृष्णजी कहते हैं कि हे उद्धव ! संसार में जो मानव 'जगत् क्या है, इसमें क्या हो रहा है ? इत्यादि बातों के विचार करने में निपुण हैं, वे चित्त में भरी हुई, अशुभ वासनाओं से अपने आपको स्वयं अपनी विवेक-शक्ति से ही प्रायः बचा लेते हैं।'

महि मयंक अहनाथ को, आदि ज्ञान भव भेद।
ता विधि तेई जीव कहँ, होत समुझ बिन खेद ॥१३१॥

महि=पृथ्वी। मयंक=चन्द्रमा। अह=दिन। नाथ=स्वामी। (अहनाथ=सूर्य)। आदि=आरम्भ भव=उत्पन्न।

१—सदगुरु।

(पृथ्वी स्वभाव से अन्धकारमय है, यदि किसी प्रकार का प्रकाश न हो, तो वह अन्धकार पूर्ण एक सपाट काली-काली दिखेगी।) चन्द्रमा और सूर्य का प्रकाश आरम्भ होने से ही, पर्वत, नदी, काला श्वेत रूप पृथ्वी में भेद-ज्ञान उत्पन्न होता है। इसी प्रकार अज्ञान दशा में जीव को भला बुरा कुछ नहीं सूझता, और यथार्थ समझ-बिना दुःख होता है। जब हृदयाकाश में विवेक-वैराग्य रूप चाँद-सूर्य उदित होते हैं, तब भले बुरे, जड़ चेतन, सत्संग-कुसंग का भेद-ज्ञान उत्पन्न होता है, और बुरे, कुसंग तथा जड़ाध्यास को त्यागकर जीव सुखी होता है ? ॥१३१॥

भाव—इस दोहा के अनुसार तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से भी भेद-ज्ञान प्रकाशधर्मा एवं अभेद-ज्ञान अन्धकारधर्मा है। जड़-चेतन का अभेद मानने वाले यहाँ विचार करें।

५६—शोक-नाश के उपाय।

तुलसी जानत साधु जन, उदय अस्तगत भेद।
बिन जाने कैसे मिटै, विविध जनन मन खेद ॥१३२॥

उदय से अस्त (सम्पूर्ण जगत्) के रहस्य को विवेकी सन्तजन जानते है, कि यह सार-हीन है। इस प्रकार बिना जाने नाना मनुष्यों के मन के कष्ट कैसे मिट सकते हैं ? ॥ १३२ ॥

शंसय शोक समूल रुज, देत अमित दुख ताहि।
अहि अनुगत सपने विविध, अहि पराय न जाहि ॥१३३॥

संसार में आनन्द समझ कर, उसके प्रति संशय-शोक रखना ही जड़दार रोग है, यह जीव को अपार दुःख देता है। जैसे स्वप्न में नाना प्रकार के सर्पों के बीच अपने को पाकर, भय-वश दुःखी होता और भागने की इच्छा होने पर भी वहाँ से भागा नहीं जाता ॥ १३३ ॥

भाव—स्वप्नावस्था में सर्प से भागने की इच्छा होते हुए भी—भागा नहीं जाता। जागने पर ही उस दुःख से छुटकारा होता है। इसी प्रकार संसार में अज्ञान-दशा में पड़कर हानि-लाभ, जरा-मरणादि के नाना कष्ट जीव सहता है, इससे त्राण पाने की इच्छा होते हुए भी तब तक दुःख नहीं छूटता, जब तक अज्ञान न दूर हो।

तुलसी साँचो साँप है, जब लगि खुलै न नैन।
सो तब लगि जबलगि नहीं, सुनै सु गुरुवर बैन ॥१३४॥

गोस्वामीजी कहते हैं कि जब तक स्वप्न से नेत्र नहीं खुलते, तब तक स्वप्न के सर्प सत्य प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार जब तक यथार्थ सद्गुरु की ज्ञानमय वाणी नहीं सुनी जाती और अज्ञान जब तक नहीं दूर होता, तभी तक सब मोह-शोक हैं ॥ १३४ ॥

पूरण परमारथ दरश, परशत जौ लगि आश।
तौ लगि खन उप्पान नर, जब लगि जल न प्रगाश ॥१३५॥

जब तक विषयों की आशा तक का स्पर्श करेगा, तब तक परमार्थ-पथ में आने पर भी, पूर्ण स्वरूप-साक्षात्कार (मोक्ष) नहीं होगा। जैसे जब तक वर्षा में विपुल जल का प्रगाश (परिपूर्णता) नहीं होता, तब तक मनुष्य (किसान) का मन क्षण-क्षण उप्पान (सूखता-शोकित) होता रहता है ॥ १३५ ॥

तब लगि हमते सब बड़ो, जब लगि है कुछ चाह।
चाह रहित कह को अधिक, पाय परम पद थाह ॥१३६॥

तभी तक हमसे सब बड़े हैं, जब तक हमारे मन में कुछ चाहना है। इच्छा-रहित होने पर कहो हमसे कौन बड़ा है, इच्छा-रहित होने पर तो परमपद-स्व-स्वरूप में ही स्थिति हो जाती है ॥ १३६ ॥

शरापा आरजू होने ने बन्दा कर दिया मुझको।
वगर्ना हम खुदा थे गर दिले बेमुद्दवा होते ॥

शरापा = सर से पैर तक। आरजू = इच्छा। वगर्ना = नहीं तो। दिले = हृदय से। बेमुद्दवा = इच्छा-रहित।

हमारे शिर से पैर तक लिपटी हुई इच्छा ने ही हमें दास बना दिया है। नहीं तो यदि हम इच्छा रहित होते, तो ईश्वर थे—इच्छा जित ही ईश्वर है।

५७—जीव अपने आप बन्ध मोक्ष का कर्ता है।

कारण करता है अचल; अपि अनादि अज रूप।
तांते कारज विपुलतर, तुलसी अमल अनूप ॥१३७॥

मोक्ष का कारण (निवृत्ति-मार्ग) बन्धन का कारण (प्रवृत्ति-मार्ग) संसार में हैं और निश्चय पूर्वक कर्ता जीव अचल, अनादि, अजन्मा, निर्मल और विलक्षण स्वरूप है। वही देह सम्बन्ध में प्रवृत्ति निवृत्ति का विपुलतर कार्य करता रहता है।। १३७ ।।

भाव—जीव ही अपने बन्धन-मोक्ष का कर्ता है। चाहे अपने को तारे, चाहे डुबावे।

करता जानि न परत है, बिनु गुरुवर परसाद।
तुलसी निज सुख विधि रहित, केहि विधि मिटै विषाद ।।१३८।।

"अपने बन्ध-मोक्ष का जीव ही कर्ता है" यह बात तब तक जानने में नहीं आती, जब तक श्रेष्ठ गुरु का कृपा-प्रसाद रूप ज्ञानोपदेश न प्राप्त हो। गोस्वामीजी कहते हैं, कि जब तक स्व-स्वरूप स्थिति के शान्ति सुख की प्राप्ति की युक्ति से रहित हैं, तब तक कष्ट कैसे मिटेगा ? ।। १३८ ।।

मृण्मय घट जानत जगत, बिन कुलाल नहिं होय।
तिमि तुलसी करतार हित, कर्म करै कहु कोय ।।१३९।।

संसार जानता है कि यह मिट्टी का घट बिना कुम्हार के नहीं बना है, (कुम्हार के लिये जैसे दूसरा कोई घट नहीं बना देता, वह स्वयं अपने स्वार्थ के लिये बनाता है) इसी प्रकार कर्ता जीव के लिये कहो कौन कर्म कर देगा ? अर्थात् कर्ता जीव ही को करना पड़ता है ।।१३९।।

ताते करता ज्ञान का, जाते कर्म प्रधान।
तुलसी ना लखि पाइहौ, किये अमित अनुमान ।।१४०।।

अतएव कर्ता-स्व-स्वरूप चैतन्य जीव का ज्ञान प्राप्त करो जो कर्मों का करने वाला कर्मों से प्रधान (श्रेष्ठ) है। (इस ज्ञान-प्राप्ति के लिये यथार्थ सद्गुरु सत्संग की आवश्यकता है) गोस्वामी जी कहते हैं कि अपार अनुमान करो, परन्तु स्व-स्वरूप नहीं जान सकोगे ।।१४०।।

अनूमान साक्षी रहित, होत नहीं परमान।
कह तुलसी प्रत्यक्ष जो, सो कहु अपर को आन ।।१४१।।

अनुमान की बातें साक्षी-रहित हैं, अतः अनुमित-कल्पित बातें प्रामाणिक (सत्य) नहीं हो सकतीं। गोस्वामीजी कहते हैं, कि जो स्वयं प्रत्यक्ष (अपना स्वरूप) है, वह कहो भला कोई दूसरा है, या उसके ऊपर भी कोई है ? कोई नहीं। फिर स्वयं प्रत्यक्ष के लिये प्रमाण की क्या आवश्यकता ? ॥ १४१ ॥

तिमि कारण करता सहित, कारज किये अनेक।
जो करता जाने नहीं, तो कहु कौन विवेक ॥ १४२॥

उपर्युक्त प्रकार से अनुमान-कल्पना को कारण (हेतु) बनाकर, कर्ता जीव नाना कार्य करता है। कारण-कार्य से श्रेष्ठ यदि कर्ता जीव (स्व-स्वरूप) को नहीं जाने, तो कहो भला ! कौन से विवेक की बात है ? ॥ १४२ ॥

सब देखत मृण भाजनहिं, कोइ कोइ लखत कुलाल।
जाके मन के रूप बहु, भाजन विलघु विशाल ॥१४३॥

मिट्टी के बर्तन तो सब देखते हैं, परन्तु कुम्हार को कोई-कोई समझते हैं (कि इसने घट बनाया है)। इसी प्रकार चारों खानि की देहें तो सब देखते हैं, परन्तु उसके रचयिता जीव को कोई बिरला तत्त्व से जानता है। कर्ता जीव के मन के बहुत रूप (वासनायें) हैं। वासनानुसार ही छोटे-बड़े, उत्तम-मध्यम शरीर रूपी बर्तन बनते हैं ॥१४३॥

एकै रूप कुलाल को, माटी एकै रूप।
भाजन अमित विशाल लघु, सो कर्ता मन रूप ॥१४४॥

कोई भी कुम्हार हो सब एक मनुष्य रूप हैं, और मिट्टी भी काली-पीली सब एक रूप है। बर्तन छोटे-बड़े अनेक प्रकार के बनते हैं, उसमें कर्ता-कुम्हार के मन की इच्छायें ही कारण हैं ॥ १४४ ॥

भाव—जितने जीव हैं, पृथक्-पृथक् होते हुए भी सब एक समान हैं, प्रकृति-सम्बन्ध में वे ही कर्ता हैं, (माटी, पानी, आग, हवा) जितने जड़तत्त्व हैं, गुण-धर्मों से परस्पर विरुद्ध होते हुए भी, सब जड़ता पूर्ण

है। कर्ता जीव जड़तत्त्वों के आधार में उत्तम-मध्यम नाना शरीर बनाता है, उसमें जीव के मन की वासनायें ही कारण हैं।

जहाँ रहत बरतत तहाँ, तुलसी नित्य स्वरूप।
भूत न भावी ताहि कह, अतिशै अमल अनूप ॥१४५॥

कर्ता जीव जहाँ, जिस देह में रहता है, वहाँ उसी प्रकार वर्तता है, तुलसीदास जी कहते हैं, कि (वह मानन्दी-अज्ञान वश कर्त्ता-भोक्ता बना है अन्यथा) वह चैतन्य जीव भूत-भविष्यादि समय की सीमा से पार अविनाशी, नित्य स्वरूप, अत्यन्त निर्मल और जड़ से सर्वथा विलक्षण है ॥ १४५ ॥

स्वास समीर प्रत्यक्ष अप, स्वच्छा दरश लखात।
तुलसी रामप्रसाद बिन, अविगति जानि न जात ॥१४६॥

वायु का अंश श्वास और अप (जल) का अंश वीर्य-इन दोनों से देह सुरक्षित है, यह प्रत्यक्ष सब देखते हैं, उसी देह में स्वच्छ दर्पण-वत् ज्ञान स्वरूप चैतन्य दिखता है, (क्योंकि श्वास, वीर्य आदि शरीर की समस्त सामग्रियाँ जड़ हैं, बिना जीव के कौन ज्ञान करे ?) गोस्वामी जी कहते हैं, कि राम-कृपा[1] बिना जो अविगति (अदृश्य चेतन) है, वह जाना नहीं जा सकता ॥ १४६ ॥

तुलसी तुल रहि जात है, युग तन अचल उपाधि।
यहि गति तेहि लखि परत जेहि, भई सुमति सुठि साधि।१४७।

तुलसीदास जी कहते हैं, कि—स्वस्वरूप को ठीक-ठीक जानने में तुल (कुछ कसर) रह जाती है, क्योंकि स्थूल-सूक्ष्म—दो शरीर कठिन उपाधि रूप माथे मढ़े हैं (जीव अपने को शरीर-मन ही मान लेता है)। यह दशा उसके समझने में आती है, जो साधना करके पवित्र सुमति को प्राप्त हैं ॥ १४७ ॥

भाव—जैसे सुमति रहने पर ग्राम के प्रधान के कथन-अनुसार सब

१—अर्थ को विवेक सम्मत बनाने के लिये राम-कृपा के स्थान पर गुरु-कृपा किया जा सकता है।

चलते हैं। वैसे जब कर्ता जीव के अनुसार मन, बुद्धि, चित्त, इन्द्रियादि सब चलने लगते हैं, तब इन्द्रिय-जयी पुरुष ही स्व-स्वरूप को गुरु द्वारा ठीक से जान सकते हैं।

५८—सबसे पृथक अपना स्वरूप, अज्ञानवश कर्ता।

जल थल तनगत है सदा, तै तुलसी तिहुँ काल।
जन्म मरण समझे बिना, भासत समन विशाल ॥१४८॥

तुलसीदास जी कहते हैं, कि पृथ्वी-जलादि जड़तत्वों से निर्मित शरीर से रहित तीनों काल (भूत-भविष्य, वर्तमान) में तू सदैव एकरस है। इस तत्त्व को समझे बिना ही, जन्म-मरण एवं विषय-वासना का भयंकर पतन प्रतीत होता है ॥ १४८ ॥

तैं तुलसी कर्ता सदा, कारण शब्द न आन।
कारण संज्ञा सुख दुख, बिन गुरु तेहि किमि जान ॥१४९॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि हे जीव ! तू ही अज्ञानवश सदैव त्रिविध कर्मों का कर्ता बना है। शब्द (नाम मात्र भी) दूसरा कारण नहीं है। सुख-दुःख का कारण संज्ञा (नाम मात्र भी) अन्य नहीं है—परन्तु बिना गुरु के इस बात को जाना नहीं जा सकता ॥१४९॥

कारज रत करता समुझु, दुख सुख भोगत सोइ।
तुलसी श्री गुरुदेव बिन, दुखप्रद दूरि न होइ ॥१५०॥

ऐसा समझो कि कर्ता जीव अपने कार्य (कृत्रिम पदार्थों) विषयों में आसक्त हो गया है, अतः वही कर्ता जीव दुःख-सुख भोग रहा है। तुलसीदास जी कहते हैं कि बिना श्री गुरुदेव की कृपा उपदेश प्राप्त हुए, दुःखप्रद विषयासक्ति तथा कृत्रिमि की आसक्ति दूर नहीं होती ॥१५०॥

५९—मन का विस्तार गुरु-सत्संग द्वारा बोध।

ख्याति सुवन तिहुँ लोक महँ, महाँ प्रबल अति सोइ।
जो कोइ तेहि पाछे करै, सो पर आगे होइ ॥१५१॥

(जीव-द्वारा मानन्दी करके बनाया हुआ 'मन' ही जीव का पुत्र है) मन-पुत्र की प्रसिद्धि तीनों लोक (सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी)

में है, वह मन तथा उसकी मानन्दी (माया प्रपंच) अत्यन्त प्रबल है। इस मन-प्रपंच को जो (अधूरे रूप से) पीछे करना चाहता है, उसके वह और आगे होता है ॥ १५१ ॥

भाव—कितने अधूरे लोग घर-त्यागकर साधू होते, तो यहाँ और अधिक माया में जकड़ जाते हैं ।

तुलसी होत नहीं कछू, रहित सुवन व्यवहार ।
ताही ते अग्रज भयो, सब विधि तेहि परचार ॥१५२॥

तुलसीदासजी कहते हैं, कि मन के बिना कोई भला-बुरा व्यवहार नहीं होता । इसीलिये सब प्रकार से मन-माया का ही फैलाव, पहले उत्पन्न होता है ॥ १५२ ॥

भाव—मन के बिना काम चलता नहीं । अतः मन से काम लेना पड़ता है । फिर अवसर पाकर और भलाई की आशा दिखाकर, यह मन लोकैषणा, वित्तैषणा तथा पुत्रैषणा में फंसा देता है ।

सुवन देखि भूले सकल, भय अति परम अधीन ।
तुलसी ज्येहि समुझाइये, सो मन करत मलीन ॥१५३॥

मन की माया (धन, पुत्र, स्त्री, उत्तम भोजन, वस्त्र, महल, विषय-भोग, मान-बड़ाई, प्रसिद्धि आदि) को देखकर, सब जीव अपने आप को भूल गये, उपर्युक्त मन की माया में परम अधीन, दृढ़ आसक्त होकर उनके छूटने—नाश होने के भय से अत्यन्त भीत रहने लगे। तुलसीदासजी कहते हैं, कि जिसको समझाओ कि यह मनका माया-प्रपंच स्त्री-धन मान-बड़ाई मिथ्या, सारहीन, दुःखप्रद हैं, वह अपने मन को मलीन करके दुखी हो जाता है, (उपदेशक ही को बुरा मान लेता है) ॥ १५३ ॥

मानत सो साँचो हिये, सुनत सुनावत वादि ।
तुलसी ते समुझत नहीं, जो पद अमल अनादि ॥१५४॥

मन की माया ही को सब अपने हृदय में सच्ची करके मान रखे हैं, फिर ज्ञान की बातें सुनना और दूसरे को सुनाना व्यर्थ है ।

गोस्वामीजी कहते हैं कि वह अपना पद नहीं समझता, जो निर्दोष तथा अनादि चैतन्य है ॥ १५४ ॥

जाहि कहत हैं सकल सो, जेहि कहतब सो ऐन ।
तुलसी ताहि समुझि हिये, अजहु करो चित चैन ॥१५५॥

जिस हृदय-निवासी चैतन्य को सब वेद-शास्त्र एक स्वर से सत्य कह रहे हैं, तथा जिस (चैतन्य जीव) का कहतब (कहा हुआ) सम्पूर्ण ऐन (मत-पन्थ-ग्रन्थ-शास्त्र) है। तुलसीदासजी कहते हैं कि उसे अपना हृदय-निवासी स्व-स्वरूप करके समझो, और आज ही चैतन्य स्वरूप में विश्रान्ति लो ॥ १५५ ॥

तुलसी जो है सो नहीं, कहत आन सब कोय ।
यदि विधि परम विडम्बना, कहहु न का कह होय ॥१५६॥

तुलसीदासजी कहते हैं, कि जो त्रिकाल सत्य सबका कल्पक, स्थापक, चैतन्य स्व-स्वरूप है, उसे तो कोई जानता नहीं, सब कोई दूसरे को ही कर्ता बता रहे हैं। इस प्रकार (सत्य छोड़ देने) से, कहो न ! किसका घोर अपमान नहीं होता ॥ १५६ ॥

गुरु करिबो सिद्धान्त यह, होय यथारथ बोध ।
अनुचित उचित लखाय उर, तुलसी मिटै विरोध ॥१५७॥

गुरु करने का सिद्धान्त यह है, कि यथार्थ स्वस्वरूप का बोध हो जाय। उचित-अनुचित, जड़ चैतन्य को गुरु पृथक-पृथक लखावे, और ठीक-ठीक समझ कर, शिष्य के हृदय का विरोध (अज्ञान) मिट जाय ॥ १५७ ॥

सतसंगत को फल यही, संशय लहै न लेश ।
ह्वै अस्थिर शुचि सरल चित, पावै पुनि न कलेश ॥१५८॥

सत्संग करने का यही फल है, कि किञ्चित भी संशय-भ्रम न रह जाय। हृदय शांत, पवित्र और सरल हो जाय, पुनः मानसिक कष्टों को न प्राप्त हो, (अन्त में जन्म-मरण से मुक्त हो जाय।) ॥१५८॥

६०—अज्ञानियों का कथन।

जो मरबो पद सबन को, जहँ लग साधु असाधु।
कवन हेतु उपदेश गुरु, सत्संगत भव बाधु ॥१५६॥
जो भावी कछु है नहीं, झूठो गुरु सत्संग।
ऐसि कुमति ते झूठ गुरु, सन्तन को परसंग ॥१६०॥

जहाँ तक साधु-असाधु हैं, यदि सबको मरना है; तो किसलिये गुरु-उपदेश लिया जाय? और सत्संग किसलिये किया जाय? जन्म-मरण नाश करने का डिमडिम भी व्यर्थ ही है ॥ १५६ ॥ यदि अपने भाग्य में कुछ भी नहीं है, तो गुरु-सन्तों का सत्संग भी व्यर्थ ही है, इनसे क्या होगा—इस प्रकार की कुबुद्धि की बात करके गुरु सन्तों का सत्संग (अज्ञानी लोग) मिथ्या सिद्ध करते हैं ॥ १६० ॥

६१—अपनी उच्चता न जानने से ही, हीनता है।

जौ लौं लखि नाहीं परत, तुलसी परपद आप।
तौ लगि मोह विवश सकल, कहत पुत्र को बाप ॥१६१॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जब तक अपना श्रेष्ठ पद (स्व-स्वरूप चैतन्य) समझने में नहीं आता। तब तक ही अज्ञान-वश सब लोग पुत्र (मन से कल्पित वस्तु) को बाप (अपना स्वामी) कहते हैं ॥१६१॥

जहँ लगि संज्ञा वरण भव, जासु कहेते होइ।
तै तुलसी सो है सबल, आन कहा कहु होइ ॥१६२॥

ककारादि वर्णों का संयोजन होकर, जहाँ तक संज्ञायें (शब्द) हरि, शिव, ईश्वरादि की होती हैं, ये जिसके कहने से उत्पन्न होती हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, हे जीव! वह तू ही शक्तिमान है। तेरे अतिरिक्त, दूसरा कहो कहाँ है? ॥ १६२ ॥

अपने नैनन देखि जे, चलहिं सुमति बर लोग।
तिनहि न बिपति विखाद रुज, तुलसी सुमति सुयोग ॥१६३॥

अतः श्रेष्ठ बुद्धिमान लोग (दूसरे की आशा-त्याग कर) अपने विवेक नेत्रों से देखकर चलते हैं। सुबुद्धि की सुन्दर योग्यता से, उनको विपत्ति, शोक, तथा मानसिक रोग नहीं व्यापते ॥ १६३ ॥

मृगा गगनचर ज्ञान बिनु, करत नहीं पहिचान।

परबश शठ हठ तजत सुख, तुलसी फिरत भुलान ॥१६४॥

पशु-पक्षी के सदृश विषयासक्त होकर, ज्ञान-बिना मनुष्यजीव, अपने आप की परख नहीं करता। मूर्ख हठता पूर्वक विषयासक्ति-वश पराये के अधीन होकर, शान्ति-सुख से वंचित रहता और भूला-भूला फिरता है ॥ १६४ ॥

कहा कहौं तेहि तोहिं को, जेहि उपदेशेउ तात।

तुलसी कहत सो दुख सहत, समझ रहित हित बात॥१६५॥

श्रोता और वक्ता के ऊपर खीझ कर गोस्वामी जी कहते हैं, हे तात! मैं उस उपदेशक को क्या कहूँ. जिन्होंने तुमको उपदेश दिया। हित की बात समझने से तू दूर है, इसीलिये विषयासक्त होकर दुःख सहता है॥ १६५॥

बिन काटे तरुवर यथा, मिटै कवन विधि छाँह।

त्यों तुलसी उपदेश बिन, नहिं संशय कोउ नाँह ॥१६६॥

बिना वृक्ष काटे, उसकी छाया कहो किस प्रकार से मिटे? गोस्वामीजी कहते हैं, इसी प्रकार उपदेश दिये बिना, किसी के संशय-भ्रम नहीं मिटते ॥ १६६ ॥

भाव—अधिकारी श्रद्धालु को उपदेश करे। ज्ञानमदी, विद्याप्रमादी, अनधिकारी को उपदेश न करे।

अपनो करतब आपु लखि, सुनि गुनि आपु बिचार।

तो तोंहि का दुखदा कहा, सुखदा सुमति अधार ॥१६७॥

अपने (मन, वाणी, शरीर के) कर्तव्य का तुम स्वयं निरीक्षण करो, सद्ग्रन्थ एवं सत्पुरुषों के वचनों का श्रवण मनन करके, स्वयं

स्वतन्त्र-दृष्टि से विचार करो, तो फिर तुमको दुःख कहाँ से होगा? सुबुद्धि के आधार से सदैव सुख ही होगा ॥ १६७ ॥

६२—चारों वर्णों के गुण-कर्म ।

ब्राह्मण वर विद्या विनय, सुरति विवेक निधान ।
पथरति अनय अतीत मति, सहित दया श्रुतिमान ॥१६८॥

विद्या, विनम्रता, अन्तःकरण में ज्ञान की प्रवीणता, अच्छे मार्ग (परमार्थ-पथ) में प्रेम, अनीति से रहित बुद्धि, दयायुत, वेद (ज्ञान) बचन की मान्यता—ये श्रेष्ठ ब्राह्मण के लक्षण हैं ॥ १६८ ॥

विनय छत्र शिर जासु के, प्रतिपद पर उपकार ।
तुलसी सो क्षत्रिय सही, रहित सकल व्यभिचार ॥१६९॥

विनय (विशेष नीति) का क्षत्र जिसके शिर पर है, अथवा जो नम्रतायुत है, प्रतिपद (पग-पग) परपराये का उपकार करता है। और सम्पूर्ण प्रकार व्यभिचार (पर स्त्री गमन, वेश्यागमन, साधु को सताने, ब्राह्मण का धन हरण करने, प्राणियों को कष्ट देने आदि) से जो रहित है, तुलसीदासजी कहते हैं, वही वास्तविक क्षत्रिय है ॥१६९॥

वैश्य विनय मग पग धरै, हरै कटुक वर बैन ।
सदय सदा शुचि सरलता, होय अचल सुख ऐन ॥१७०॥

विनय (विशेष नीति) के मार्ग में पैर रखे, अथवा नम्रतायुत चले; कटु बचन बोलना त्याग कर, श्रेष्ठ मीठे बचन बोले। सदैव, अथवा दयायुत, अन्तर-बाहर पवित्र और सरल रहे, हृदय-घर में स्थिर-सुख शान्ति का अनुभव करे, कभी शोक न करे—ये वैश्य के लक्षण हैं ॥ १७० ॥

शूद्र छुद्र पथ परिहरै, हृदय विप्रपद मान ।
तुलसी मन समता सुमति, सकल जीव सम जान ॥१७१॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि नीच-मार्ग का त्याग करे, हृदय से विप्रपद में श्रद्धा रखे। मन में समता एवं सुबुद्धि रखे और सम्पूर्ण

जीवों को अपने समान जानकर, दया का बर्ताव करे— यही शूद्र के लक्षण हैं ।। १७१ ।।

हेतु बरन वर शुचि रहनि, रस निरास सुखसार ।
चाह न काम सुरा नरम, तुलसी सुदृढ़ विचार ।।१७२।।

चारो बर्णों में सबसे श्रेष्ठ वर्ण वाला वही है, जिसके रहन-सहन पवित्र हैं, विषय-रस से निवृत्त होकर जो सुख-सागर शान्ति में विहार करता है। जिसके बिषय-इच्छा, कामासक्ति, धन-विद्यादि का मद नहीं हैं, स्वभाव से नम्र और सुदृढ़ विचार वाला है ।। १७२ ।।

६३—परमार्थ पथगामियों के गुण-लक्षण ।

यथा लाभ सन्तोष रत, गृह मग वन सम रीति ।
ते तुलसी सुख में सदा, जिन तन विभव विनीति ।।१७३।।

आश्रम में, पथ में, वन में—कहीं भी रहे, सम व्यवहार रखकर, जितना प्राप्त हो, उसी में सन्तोष पूर्वक निर्वाह ले। गोस्वामीजी कहते हैं कि जिनके शरीर-मन में विशेष नीति के ऐश्वर्यं (क्षमा, दया, समता, त्याग, सन्तोष, परोपकार, नम्रतादि) हैं, वे सदैव सुख-शान्ति से भरपूर हैं ।। १७३ ।।

रहै जहाँ विचरे तहाँ, कमी कहूँ कछु नाहिं ।
तुलसी तँह आनन्द सँग, जात यथा संग छाँहि ।।१७४।।

विवेकवान् जहाँ रहते हैं या जहाँ विचरते हैं, वहाँ उनको कुछ कमी नहीं रहती। गोस्वामी जी कहते हैं कि जैसे देह के साथ में छाया जाती है, वैसे विवेकवान के साथ में सुख-शान्ति घूमती है ।।१७४।।

करत करम जेहि को सदा, सो मन दुख दातार ।
तुलसी सो समुझै मनहिं, तौ तेहि तजै विचार ।।१७५।।

जिस मन की सम्मत्ति में पड़कर सदैव प्रपंच-कार्य करते हो, वह दुःख ही देने वाला है। गोस्वामीजी कहते हैं कि दुःख का कारण मन को समझे, तो विचार करके उसकी कुचाल को छोड़ दे ।।१७५।।

कहत सुनत समुझत लखत, तेहिते विपति न जाय ।
तुलसी सब ते विलग है, जब तैं नहिं ठहराय ॥१७६॥

"विषय-वासना और प्रपंच-प्रवृत्ति में दुःख है" इस बात को स्वयं कहता है, दूसरे से सुनता है, मन में समझता है और विषय-प्रपंच-वश अनेकों को दुखी भी देखता है, परन्तु वही कुचाल स्वयं नहीं त्यागता, इसलिये विपत्ति नहीं मिटती। गोस्वामी जी कहते हैं हे जीव ! तू देह, इन्द्रिय, मन, संसार,—सबसे भिन्न है, यदि तू मन को विषयों-प्रपंच-प्रवृत्तियों में न ठहराये, तो सबसे मुक्त हो जाय ॥१७६॥

सुनत कोटि कोटिन कहत, कौड़ी हाथ न एक ।
देखत सकल पुराण श्रुति, तापर रहित विवेक ॥१७७॥

जैसे कोई करोड़ों रुपये की वार्ता सुने और स्वयं करे, परन्तु पुरुषार्थ न करने से, एक कौड़ी भी हाथ में न लगे। इसी प्रकार करोड़ों ज्ञान की वार्ता लोग सुनते और करते हैं, परन्तु किंचित भी संत-लक्षण धारण नहीं करते। सम्पूर्ण वेद पुराण पढ़ते हैं, तिसपर भी विवेक रहित (विषय-लम्पट) बने रहते हैं ॥ १७७ ॥

समुझत हैं सन्तोष धन, याते अधिक न आन ।
गहत नहीं तुलसी कहत, ताते अबुध मलान ॥१७८॥

लोग समझते हैं कि सन्तोष ही परम धन है, इससे अधिक (या इसके बराबर) दूसरा धन नहीं है। गोस्वामीजी कहते हैं, तिसपर भी लोग सन्तोष नहीं धारण करते, इसीलिये अज्ञानी चाहना-वश मलीन बने हैं ॥ १७८ ॥

कहा होत देखे कहे, सुनि समझे सब रीति ।
तुलसी जब लग होत नहिं, सुखद रामपद प्रीति ॥१७९॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि सब शास्त्रों को देखने से, ज्ञान की बात कहने सुनने से और सब उचित-व्यवहार समझने से क्या होता है, जब तक विषय-प्रपंच—व्यवहार त्यागकर सुखदायी रामपद (चेतन स्वरूप) में प्रेम नहीं होता ॥ १७९ ॥

६४—सांसारिक कामना-त्यागना ही कल्याण साधन है।

कोटिन साधन के किये, अन्तर मल नहिं जाय।
तुलसी जौ लगि सकल गुण, सहित न काम नशाय ॥१८०॥

तुलसीदास जी कहते हैं (जप, तप, तीर्थ, व्रत, वेद-पाठ, यज्ञादि) करोड़ों साधन करने से भी, अन्तःकरण की मलीनता तब तक नहीं जाती। जब तक सम्पूर्ण गुण (सत, रज, तम) के सहित कामना का नाश नहीं होता ॥ १८० ॥

भाव—सत (प्रेम), तम (वैर), रज (जगत्-प्रवृत्ति) इन तीनों गुणों के सहित काम-वासना का नाश करना ही, साधक का परम कर्तव्य है।

चाह बनी जब लगि सकल, तब लगि साधन सार।
तामह अमित कलेश कर, तुलसी देखु विचार ॥१८१॥

गोस्वामीजी कहते हैं कि विचार करके देखो—जब तक संसार के सम्पूर्ण सुख-भोगों एवं मान बड़ाई की इच्छायें बनी हैं, तब तक (जप-तपादि) नाना साधनों का फल यही होता है कि उसमें (व्यर्थ) अपार कष्ट केवल भोगने होते हैं ॥ १८१ ॥

चाह किये दुखिया सकल, ब्रह्मादिक सब कोय।
निश्चलता तुलसी कठिन, राम कृपा वश होय ॥१८२॥

सांसारिक चाहना करके ब्रह्मा, विष्णु, शिव, मुनि आदि सब कोई दुखिया हैं। गोस्वामीजी कहते हैं, (बिना इच्छा का त्याग किये) शान्ति पाना दुर्गम हैं, शान्ति तभी मिलती है, जब राम-कृपा (अपनी दृष्टि अपनी ओर) हो ॥ १८२ ॥

अपनो कर्म न आपु कहँ, भलो मन्द जेहि काल।
तब जानब तुलसी भई, अतिशय बुद्धि विशाल ॥१८३॥

जिस समय में जान-बूझकर बुरे कर्म तो बिलकुल होते ही नहीं, जो अपने अंगों से शुभ कर्म होते हैं, वे भी अपने को अहंकार-कामना

में बाँध नहीं पाते। गोस्वामीजी कहते हैं कि ऐसी स्थिति में जानो साधक की बुद्धि अत्यन्त श्रेष्ठ हो गयी ॥ १८३ ॥

तुलसी तैं झूठो भयो, करि झूठे सँग प्रीति।
है साँचो होय साँच जब, गहै राम की रीति ॥१८४॥

गोस्वामीजी कहते हैं, कि हे जीव ! झूठे देह-गेह, मन-मानन्दी के संग में पड़कर तू झूठा हो गया (जड़ाध्यासी हो गया) है। तू त्रयकाल सत्य है, परन्तु जब राम (चैतन्य-स्व-स्वरूप) की रीति (व्यवहार स्थिति) करके सत्य रहनी से चले ॥ १८४ ॥

झूठी रचना साँच है, रचत नहीं अलसात।
बरजत हूँ झगरत बिहठि, नेकु न बूझत बात ॥१८५॥

देह-गेह, मन-मानन्दी आदि की झूठी रचना भी तू सत्य करके मानता है, और इसकी रचना करने में तू आलस नहीं प्रकट करता। रोकने पर भी हठ पूर्वक झगड़ा करता है, किञ्चित भी बात नहीं समझता ॥ १८५ ॥

भाव—झूठी माया के प्रपंच से रोकने पर जीव उल्टे उपदेशक के प्रति क्रोध प्रकट करता है। उपदेश मानकर कल्याण नहीं करता।

६५—जड़ दृश्य से अपने चेतन स्वरूप की पृथकता।

शब्द रूप विवरण विशद, तासु योग भव नाम।
करता नृप बहु जाति तेहि, संज्ञा सब गुण धाम ॥१८६॥

शब्द—रूपादि पाँचों विषयों से विवरण (पृथक्) होने पर अपना चेतन स्वरूप विशद (शुद्ध-कल्याण) रूप है, और उन्हीं पाँचों विषयों में सम्बद्ध (आसक्त) होने से, संसार नाम पड़ता है। देह-धारण करके कर्ता जीव रूप (शरीर नगरी के) राजा (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, यवनादि) बहुत जाति, (केशव, दामोदर, मुहम्मद, जार्विस आदि) अनेकों नाम तथा शुभ गुण, दुर्गुण आदि के नाना गुणों के धाम होता है ॥ १८६ ॥

नाम जाति गुण देखि कै, भयो प्रबल उर भर्म ।
तुलसी गुरु उपदेश बिन, जानि सकै को मर्म ॥१८७॥

शरीर के कल्पित नाम, जाति, गुण आदि देखकर, जीव के हृदय में प्रबल भ्रम हो गया, कि "यह सब मेरे ही रूप हैं।" गोस्वामीजी कहते हैं कि बिना सद्गुरु से उपदेश प्राप्त किये, ठीक भेद कौन जान सकता है (कि कल्पित जाति, गुण, नाम आदि शरीर-संसार दृश्य-वर्ग से अपना चेतन स्वरूप पृथक् , शुद्ध कल्याण स्वरूप है) ॥१८७॥

आपन कर्म बर मानि कै, आप बँधो सब कोय ।
कारज रत करता भयो, आपन समुझत सोय ॥१८८॥

अपने किये हुए कर्मों को अपने से बड़ा मानकर, सब जीव स्वतः बंधे हैं। कृत्रिम कार्य में ही कर्ता-जीव आसक्त हो गया, जड़ कृत्रिम को ही अपना रूप समझता है ॥ १८८॥

तुलसी बिन गुरु को लखै, वर्तमान विधि रीति ।
कहु केहि कारण ते भयो, सूर उष्ण शशि शीत ॥१८९॥

गोस्वामीजी कहते हैं कि बिना सद्गुरु-उपदेश के वर्तमान की दो (विरोधी) रीतियाँ कौन जान सकता है ? कहो भला ! सूर्य गर्म और चन्द्रमा शीतल किस कारण से हुए ? ॥ १८९ ॥

भाव—सूर्य की गर्मी, चन्द्रमा की शीतलता स्वाभाविक हैं। इसी प्रकार विरोधी जड़-चेतन स्वाभाविक हैं।

करता कारण कर्म ते, पर पर आतम ज्ञान ।
होत न बिन उपदेश गुरु, जो षट वेद पुरान ॥१९०॥

कर्ता; कारण कर्म से अत्यन्त श्रेष्ठ स्व-स्वरूप का ज्ञान है, (कारण कर्म जड़ है, चेतन जीव ही भूल वश कर्ता बना है, कर्तृत्वाभिमान का त्याग करके, वही कल्याणस्वरूप है)। परन्तु बिना सद्गुरु के उपदेश पाये, यह ज्ञान नहीं होता, चाहे छः शास्त्र चारों वेद और अठरहों पुराण पढ़ डालो ॥ १९० ॥

प्रथम ज्ञान समझे नहीं, विधि निषेध व्यवहार।
उचितानुचितै हेरि धरि, करतब करै सँभार ॥१९१॥

ज्ञान का मुख्य लक्षण तो विधि-निषेध का व्यवहार है, (करने योग्य करना, न करने योग्य न करना), परन्तु कितने ही अहंब्रह्मा की डींग हाँकने वाले इस बात को नहीं समझते, (कहते हैं, हम ब्रह्म सारा जगत हमी हैं, विधि-निषेध कुछ नहीं पाप-पुण्य, जड़-चेतन कुछ नहीं) । अतएव उचित-अनुचित का विचार करके अनुचित का त्याग तथा उचित का ग्रहण करे, और अपने कर्तव्य को सम्हाले ॥१९१॥

६६—मनुष्य की उल्टी प्रवृत्ति।

बरबस करत बिरोध हट, होन चहत अक हीन।
गहि गति बक वृक श्वान इव, तुलसी परम प्रवीन ॥१९२

जबर्दस्ती और हठ पूर्वक उल्टा कार्य (राग-द्वेष विषयासक्ति जनित-व्यवहार) करता है, (केवल ज्ञान, की कथनी करके) दुःख रहित होना चाहता है। बकुला, भेड़हा और कुत्ता के समान (दम्भ निर्दयता तथा विषयासक्ति-बकवासीपन के) आचरण धारण कर चलता है। गोस्वामीजो कहते हैं, तिसपर भी अपने को परम बुद्धिमान मानता है ॥ १९२ ॥

आक कर्म भेषज विदित, लखत नहीं मति हीन।
तुलसी सठ अकबस त्रिहठि, दिन दिन दीन मलीन ॥१९३

आक (दुःख-भवरोग) की औषध शुभकर्म, सत्संग, विषयों वैराग्यादि हैं—यह संसार में सबको ज्ञात है, परन्तु बुद्धिहीन मनु को सूझता नहीं। गोस्वामीजी कहते हैं कि मूर्ख मनुष्य भव—दुःखों पीड़ित होकर, अति हठ पूर्वक दिन प्रतिदिन दीन-मलीन हो जाता है ॥ १९३ ॥

कर्ता ही से कर्म युग, सो गुण दोष स्वरूप।
करत भोग करतब यथा, होय रंक किन भूप ॥१९४

कर्ता जीव ही से शुभ-अशुभ दो कर्म होते हैं, वे कर्म गुण और
ोष रूप हैं, (शुभ कर्म गुणमय, अशुभ कर्म दोषमय)। कर्म के
नुसार ही लोक परलोक में फल भोगते हैं, चाहे राजा हो चाहे
क हो ॥ १९४ ॥

भाव—शुभ कर्म करने से आज सुयश-सुख और परलोक में सुख
था अशुभ कर्म करने से आज अपमान-अयश और परलोक में दुःख
। अतः कभी बुरे कर्म न करे, सदैव अच्छे कर्म करे।

६७ — शास्त्रों में खींचतान।

वेद पुराण शास्त्रहु यतत, निज बुधि बल अनुमान।
निज निज करि-करि हैं बहुरि, कह तुलसी परमान ॥१९५॥
विविध प्रकार कथन करें, जाहि यथा मन मान।
तुलसी गुरु परसाद बल, कोउ कोउ कहत प्रमान ॥१९६॥

गोस्वामी जी सत्य कहते हैं, कि जहाँ तक वेद, पुराण और शास्त्र
ई, अपने-अपने बुद्धि-बल और अनुमान (अन्दाज) से, फिर अपनी-
पनी ओर खींच करके कहे गये हैं ॥ १९५ ॥ संसार में जिनका जहाँ
क अन्दाज गया, सब अनेकों प्रकार कथन किये। गोस्वामी जी कहते
 कि सद्गुरु के कृपा-बल से, कोई-कोई सत्य-स्वरूप जान कर, प्रामा-
णित बात कहते हैं ॥ १९६ ॥

८६—अभिमानी मनुष्य की विवेक-हीनता।

उर डर अति लघु होन को, भव लघु सुरति भुलानि।
स्वर्णलाहु लखि परत नहिं, लखत लोह की हानि ॥१९७॥

छोटे (अपमानित) होने का हृदय में बहुत बड़ा डर है, जन्मादि
क्कर में पड़कर जो लघुता होती है, उसका ध्यान नहीं रहा। स्वर्ण
 सोने) का लाभ तो नहीं दिखता, लोहे की हानि देखता है ॥१९७॥

भाव—जाति, विद्या, धन, देहादि के मद-वश सन्तों के नमस्कार,
सत्संग, सेवा, भक्ति, साधनादि करने में मनुष्य के हृदय में बड़ा भय

इसलिये समाया है कि लोग हमें छोटा करके न समझ लें। परन्तु इस अभिमान-वश सत्संग से रहित होकर, बुरे कर्म करके, जन्मादि चक्र में शूकर-कूकरादि होकर, अत्यन्त अपमानित होगा—इसका ध्यान नही है।

सत्संग से आत्म-शान्ति, पारलौकिक उन्नित रूप सोने का लाभ नही देखता। देह की मान-बड़ाई रूप लोहे की हानि देखता है। यह नहीं समझता, कि सत्संग-भक्ति करने से मान-बड़ाई घटने की अपेक्षा बढ़ता ही है। पहले के कितने ही बड़े-बड़े पण्डित, राजा और धनवान का कोई न नाम लेता है और न उन्हें कोई बहुधा जानता ही है परन्तु शबरी, मीरा, रैदास को सभी जानते और उनके नाम का आदर करते हैं।

नैन दोष निज कहत नहि, विविध बनावत बात।
सहत जानि तुलसी विपति, तदपि न नेक लजात ॥१९८॥

(कम दिखने के कारण कोई लड़खड़ा कर गिर पड़ा, लोगों के पूछने पर, अभिमान-वश वह) अपने नेत्रों का दोष नहीं कहता, इधर उधर की नाना बातें बनाता है। गोस्वामी जी कहते हैं, कि जान-बूझ कर मनुष्य दुःख सहता है, अपने इस नीच कर्तव्य पर, किंचित् भी लज्जा नही करता॥ १९८॥

एक मनुष्य सगे-नातों में पहुनाई करने गया। वहाँ पर वह एक घण्टा रात होने पर पहुंचा। उसको रतौन्धी होती थी (रात में नहीं दिखता था)। वह अभिमानवश किसी से द्वार नहीं पूछा। पिछवाड़े ही की ओर द्वार समझ कर छप्पर टटोलने लगा। इतने में उसका समधी देखा और झट आकर नमस्कार किया, कहा–'आप' इधर क्यों भटक रहे हैं द्वार तो दूसरी ओर है।' उसने कहा 'मैं द्वार नही ढूढ़ता हूँ, मैं तो यह देखता हूँ कि छप्पर ठीक छाया है कि नही।'

भोजन बनाया गया। जब भोजन करने बैठे, बिल्ली आकर थाल में धीरे-धीरे खाने लगी। लोगों ने कहा 'अरे! समधी जी! क्या आ

को रतौन्धी होती है ? दिखता नहीं, यह बिल्ली आपकी थाली में खा रही है।' उन्होंने कहा 'मुझे रतौन्धी नहीं होती है, मैं देखता हूँ कि बिल्ली हमारी थाली में खा रही है। मैं इसे निडर कर रहा हूँ। अभी मजा चखाऊँगा।'

समधिनि दुबारा दाल परोसने आयीं। महाशय जी समझे बिल्ली पुनः आ गयी। अतः पीढ़ा उठाकर दे धमके ! समधी ने कहा 'अरे ! आपने क्या किया ? अपनी समधिनि का ही पैर उखाड़ डाला ?'

आधी रात के पश्चात् महाशय जी को लघुशङ्का (पेशाब) लगी। तो उन्होंने अपनी डोरी का एक छोर चारपाई में बाँध दिया और एक छोर अपने कमर में बाँध लिया, जिससे अपना खाट छूट न जाय और लघुशङ्का करने चले। दिखता तो था नहीं, आगे कूआँ में गिर पड़े और कमर की रस्सी से बँधा हुआ खाट खड़खड़ाते हुए घसिट कर, कूंआ के जगत के ऊपर धरन पर आ टिका और महाशय जी कूयें में लटके फटफटा रहे हैं। सब लोग दौड़े-दौड़े आये और निकालने लगे महाशय जी अपने नेत्र-दोष को छिपाने के लिये, अभिमान-वश कहते हैं 'अरे भाई ! मुझे कोई मत निकालो। मैं ऐसा जान बूझ कर किया हूँ। मैंने समधिनि को एक पीढ़ा मारा है, तो उसके प्रायश्चित में मैं अपनी जान देना चाहता हूँ।'

लोग उनको कूयें से निकाल लिये। प्रातःकाल होने पर वे अपने घर चले गये। परन्तु नाना कष्ट सहकर भी अपनी रतौन्धी उन्होंने किसी को नहीं बतायी।

इसी प्रकार कितने लोग केवल हठ पूर्वक घोर तपस्या करके अथवा पढ़-लिख कर कुछ बोलने-बात करने का ढंग जानकर, अपना कल्याण चाहते हैं। अभिमान-वश कल्याण-पथ-प्रदर्शक सद्गुरु की शरण नहीं लेते और न अपने हृदय की अज्ञान-दशा को कहते हैं। विषय-वासना वश लड़खड़ा कर गिरते हैं, तो उसको ढाँकने के लिये नाना प्रकार की बातें बनाते हैं। इस प्रकार जान-बूझ कर अभिमान-वश दुःख सहते हैं किंचित भी लज्जा नहीं करते।

इसीपर गुरु कबीर कहते हैं—

परदे पानी ढारिया। सन्तों करो विचार।
शरमा शरमी पचि मुआ। काल घसीटन हार॥
(बीजक)

करत चातुरी मोह वश, लखत न निज हित हान।
शुक मर्कट इव गहत हठ, तुलसी परम सुजान॥१९९॥

मान-भोग के लिये अज्ञान-वश चतुरता करता है, अपने कल्याण की हानि नहीं देखता। गोस्वामीजी कहते हैं कि बनता है परम बुद्धिमान और सुग्गा-बन्दर की भाँति हठ पूर्वक स्वतः बन्धन पकड़ता है॥ १९९॥

भाव—नलिका यन्त्र (लकड़ी की चरखी) पर लाल मिर्ची के लोभ-वश सुग्गा जैसे स्वयं पकड़ाया जाता है और सकरी सुराही में लोभ-वश चने को मुट्ठी से न छोड़ने के कारण, बन्दर कलन्दर के हाथ स्वतः पकड़ाया जाता है। इसी प्रकार मान-भोग के लोभ-वश जीव स्वयं बन्धनों को धारण कर लेता है।

दुखिया सकल प्रकार शठ, समुझि परत तेहि नाहिं।
लखत न कंटक मीन जिमि, असन भखत भ्रम नाहि॥२००॥

मूढ़ सब प्रकार से दुखिया है, परन्तु मद-वश उसे सूझ नहीं पड़ती। जैसे मछली बंसी (कटिया) के काँटे को नहीं देखती, काँटे में पिरोये हुए चारे के खाने में सन्देह नहीं करती, (इसी कारण मारी जाती है), इसी प्रकार विषय-भोगों के परिणाम में अनन्त दुःखों को जीव नहीं देखता, इसलिये सब दुःख सहता है॥२००॥

तुलसी निज मन कामना, चहत शून्य कह सेय।
वचन गाय सबके विविध, कहहु पयस केहि देय॥२०१॥

गोस्वामीजी कहते हैं, कि लोग निराकार का सेवन करके अपने मन की कामना की पूर्ति करना चाहते हैं। जैसे अनेकों गोपियों के

बचन मात्र के विविध प्रकार के गाय हों, तो कहो भला दूध कौन देगा ? ॥ २०१ ॥

भाव—जैसे वचन मात्र की गाय न दूध देती है और मनुष्य की न उससे तृप्ति होती है। वैसे विषयों से तृप्ति नहीं हो सकती है।

यदि कहिये 'गुरु का निर्णय-सत्संग आदि सब बात रूप ही है। फिर बात का कैसे खण्डन हो सकता है ?' तो बात दो प्रकार की होती है—एक सार्थक, दूसरी निरर्थक, एक कल्याणकारी दूसरी अकल्याणकारी, उसे गोस्वामीजी अगले प्रकरण में स्वयं कह रहे हैं—

६९—बात (वाणी) का परिचय।

बातहिं बातहिं बनि परै, बातहिं बात नशाय।
बातहिं आदिहि दीप भव, बातहि अन्त बताय ॥२०२॥

बात-ही-बात में काम बन जाता है, और बात-ही-बात में काम बिगड़ जाता है। देखो ! अग्नि लेकर बात (वायु) से प्रथम दीपक-ज्योति की उत्पत्ति होती है, और बात (प्रबल-वायु) ही, अन्त में उसे बुझा देता है ॥ २०२ ॥

भाव—ध्रुव का अपनी माता से बात करने से, उनका बन गया। जय-विजय का सनकादिकों से बात करने से उनका बिगड़ गया। अतः सावधान होकर बात करो।

बातहि ते बनि आवई, बातहि ते बनि जात।
बातहि ते वर बर मिलत, बातहि ते बौरात ॥२०३॥

नम्रता, शिष्टता, गम्भीरता, युक्ति पूर्वक और मीठी बातों के करने से काम बन जाता है; और अभिमान पूर्ण, असभ्य, छिछिली, ऊटपटाङ्ग एवं कड़ी बात करने से बना-बनाया काम बिगड़ जाता है। देखो ! अच्छी बात करने के बदले में श्रेष्ठ आशीर्वाद मिलता है और बुरी या बेढंगी बात करने से, उत्तर में वाण सदृश ऐसी बात मिलती है, जिनको सुनकर मनुष्य क्रोध में पगला हो जाता है ॥ २०३ ॥

बात बिना अतिशय विकल, बातहि ते हर्षात।

बनत बात बर बात ते, करत बात बर घात ॥२०४॥

किसी के यहाँ जाओ और वह ठीक से बात न पूछे, अथवा अपने मन की बात या अपनी कही हुई बात यदि पूरी न हों, तो मनुष्य अत्यंत व्याकुल हो जाता है। और मन की बात पूरी होने पर अथवा अनुकूल बात सुनकर, परम हर्षायमान होता है। एक बात से बड़ी बात बन जाती है और एक बात श्रेष्ठ बात का नाश कर देती है ॥ ३०४ ॥

तुलसी जाने बात बिन, बिगरत हर इक बात।

अनजाने दुःख बात के, जानि परत कुशलात ॥२०५॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि बात को बिना जाने बिना बिचारे बात बोलने से प्रत्येक बात बिगड़ जाती है। बात को ठीक से न जानने से दुःख होता है, और बात को ठीक जान लेने पर कुशल होता है ॥२०५॥

प्रेम बैर औ पुण्य अध, यश अपयश जय हान।

बात चीत इन सबन को, तुलसी कहहिं सुजान ॥२०६॥

प्रेम-वैर, पुण्य-पाप, यश-अपयश, विजय-हार—इन सब में बात-चीत का बड़ा महत्त्व है, इस प्रकार बुद्धिमान कहते हैं ॥ २०६ ॥

भाव—विनम्र, युक्ति पूर्वक एवं विवेक युक्त बात करने से प्रेम, पुण्य, यश और विजय होती है। अनुचित अविवेकपूर्ण और अनम्र बात करने से बैर, पाप, अपयश और हार होती है।

७०—स्वर्ग की सात सीढ़ियाँ।

सदा भजन गुरु साधु द्विज, जीव सदा सम जान।

सुखद सुनय रत सत्यव्रत, स्वर्ग सप्त सोपान ॥२०७॥

(१) सदैव भजन (विकारों का त्याग) करना, (२) गुरु-साधु-ब्राह्मणों की सेवा करना, (३) जीव दया करना, (४) सब पर समता-दृष्टि रखना, (५) सबको सुख देने की भावना रखना, (६) सुन्दर नीति से प्रेम रखना, (७) सत्य का व्रत धारण करना—ये सातों स्वर्ग (सुख भोग) की सीढ़ियाँ हैं ॥ २०७ ॥

भाव—स्वर्ग का कहीं लोक नहीं। इस जन्म तथा भविष्य जन्म से सांसारिक सुखों को प्राप्त होना ही स्वर्ग है। जो सत्कर्मों से मिलते हैं।

७१—नरक की तीन सीढ़ियाँ।

बंचक विधि रत नर अनय, विधि हिंसा अति लीन।
तुलसी जग महँ विदित बर, नरक निसेनी तीन ॥२०८॥

गोस्वामीजी कहते हैं, जो मनुष्य, (१) बंचक विधि (छल, ठगाई, चोरी आदि) में रत हैं, (२) अनीति (परस्त्री-गमन, परधन-हरण आदि) करता है और (३) पराये जीवों को पीड़ा देने में अत्यन्त अनुरक्त है (वह नरक गामी है)। इस प्रकार छल, अनीति और हिंसा ये तीन नरक की श्रेष्ठ सीढ़ियाँ हैं—जगत में यह सब जानते हैं ॥ २०८ ॥

७२—शुभाशुभ-दोनों कर्म करने वालों की दशा।

जे नर जग गुण-दोष युत, तुलसी बदत विचार।
कबहुँ सुखी कबहूँ दुखित, उदय अस्त व्यवहार ॥२०९॥

तुलसी दास जी विचार कर कहते हैं कि संसार में जो मनुष्य गुण (पुण्य), दोष (पाप) के सहित कर्म करते हैं। वे सूर्य के उदय होने पर प्रकाश और अस्त होने पर अन्धकार के अनुसार कभी (पुण्य-कर्म-उदय होने पर) सुखी और कभी (पापकर्म उदय होने पर) दुःखी होते रहते हैं, (अतः केवल पुण्य-कर्म करना चाहिये; पाप नहीं ॥ २०९ ॥

७३—शुभाशुभ दोनों कर्म बन्धन।

कारज जग के युगल तम, काल अचल बलवान।
त्रिविधि विबलते ते हठहिं, तुलसी कहहिं प्रमान ॥२१०॥

जगत् के पाप और सकाम पुण्य दोनों कर्म अन्धकारमय हैं और जीव को, बलवानकाल (जन्म-मरण) के अविचल चक्कर में डालने

वाले हैं। तीन प्रकार (सत, रज, तम गुणों) की प्रबलता से, वे जीव हठ पूर्वक कर्म करके संसृति चक्कर में घूमा करते हैं, इस प्रकार गोस्वामीजी सत्य कहते हैं ॥ २१० ॥

अनुभव अमल अनूप गुरु, कछुक शास्त्र गति होय ।
बचै काल क्रम दोष ते, कहहिं सुबुध सब कोय ॥२११॥

सद्गुरु के सत्योपदेश से (हठता और विषयासक्ति का नाश होकर जब सारासार-विचार हो और असार जड़ देहादि की अहन्ता नष्ट होकर) निर्मल एवं बिलक्षण अनुभव प्राप्त हो, और कुछ शास्त्रों (सद्ग्रथों) का भी ज्ञान-मनन हो, तभी यह जीव काल और कर्मबन्धनों के चक्कर से बच सकता है—ऐसा सभी विवेकी कहते हैं ॥ २११ ॥

७४—बिना गुरुकृपा कल्याण नहीं ।

सुखद दुखद कारज कठिन, जानत को तेहि नाहिं ।
जानेहु पर बिन गुरु कृपा, करतब बनत न ताहि ॥२१२॥

पुण्य सुखदायी कर्म हैं, और पाप दुःखदायी कर्म हैं, इसे भला ! कौन नहीं जानता है ? (परन्तु पाप का त्याग करना और पुण्य का ग्रहण करना) ये दोनों ऐसे कठिन हैं कि ऐसा जानने पर भी, बिना सद्गुरु की कृपा हुए, इसके कर्त्तव्य नहीं बन पड़ते ॥ २१२ ॥

भाव—सच्चे सद्गुरु की शरण लेकर सत्योपदेश-द्वारा बोध पाकर ही मनुष्य पाप से बच सकता है। जो सद्गुरु का त्याग करके, केवल पुस्तक पढ़कर और प्रवचन सुनकर मोक्ष चाहते हैं, वे बड़ी भूल में हैं। गुरु उपदेश ही गुरुकृपा है।

७५—संसार से निराश पुरुष ही, विद्वान और त्यागी है ।

तिनहिं पढ़े तिनहीं सुने, तिनहिं सुमति परगास ।
जिन आशा पाछे करे, गहे अलंम निरास ॥२१३॥

वे ही पढ़ने का फल पाये, वे ही सुनने का फल पाये अथवा वे ही विद्वान एवं स्रोता हैं और उन्हीं की सुन्दर मति प्रकाशित है। जिन्होंने

सांसारिक सभी आशाओं को पीछे डालकर पूर्ण निराशा को धारण कर लिया है ॥ २१३ ॥

तब लगि योगी जगत गुरु, जब लगि रहै निराश ।
जब आशा मन में जगी, जग गुरु योगी दास ॥२१४॥

तभी तक साधु जगत का गुरु है, जब तक वह संसार से सब प्रकार निराश है और जब उसके मनमें संसार की आशा जागृत हुई, तो जगत् गुरु हो गया और साधु हो गया दास । ॥२१४॥

७६—स्वार्थी का धोखेबाजी ।

देइ सुमन करि बास तिल, परिहरि खरि रस लेत ।
स्वारथ हित भूतल भरे, मन मेचक तन सेत ॥२१५॥

फूलों की सुगन्धी तिल को देकर और उसे पेर कर लोग रस (तेल) ले लेते हैं; और खरी त्याग देते हैं । इस प्रकार स्वार्थ-परायण मनुष्य पृथ्वी पर भरे हुए हैं, जिनका मन तो काला है और शरीर उजला है ॥ २१५ ॥

भाव—फूलों की सुगन्धी देकर स्वार्थ-वश लोग तिल को पेर डालते हैं । इसी प्रकार मीठी-मीठी बातें करके, लोग दूसरे का धन हरण कर लेते हैं ।

७७—झूठे संसार से धोखा खाना पड़ता है ।

अँसुअन पथिक निराश ते, तट भुइँ सजल स्वरूप ।
तुलसी किन वंचे नहीं, इन मरुथल के कूप ॥२१६॥

जल पाने से निराश होने पर पथिक के आँसुओं से उसके नेत्र तट की जमीन सजल स्वरूप (भींगी-भींगी) हो गयी । तुलसीदास जी कहते हैं कि इन मरुस्थल (रेगिस्तान) के जल-रहित कूओं से कौन नहीं ठगे गये ॥ २१६ ॥

भाव—मरुभूमि के जल-रहित कूयें को जलयुक्त जानकर कोई बड़ी दूर से उसके पास गया । परन्तु पानी न पाने से रोता हुआ लौटा ।

इसी प्रकार इस संसार के स्त्री-पुत्र-धनादि के विषय भोगों में सुख मान-कर जीव इनके लिये दौड़ता है, परन्तु सुख न पाने से निराश होता है।

७८—छल-रहित मित्रता सुखदायी होती है ।

तुलसी मित्र महा सुखद, सबहि मित की चाड़ ।
निकट भये विलसत सुखप, एक छपाकर छाड़ ॥२१७॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि मित्र महान सुखदायी होता है, इसी-लिये मित्र की सब बड़ी चाहना करते हैं। मित्र के पास जाने पर सब लोग विलसते तथा अत्यन्त सुख पाते हैं, परन्तु एक छपाकर (चन्द्रमा) को छोड़कर ॥ २१७ ॥

भाव—अमावस्या को चन्द्रमा और सूर्य (दोनों मित्र) एक ही राशि में आते हैं, परन्तु चन्द्रमा प्रकाशहीन रहता है। इसी प्रकार मित्र से हृदय की बात छिपाने वाले, मित्र से मिलने पर भी सुखी नहीं होते, उदास रहते हैं।

मित्र कोप वरतर सुखद, अनहित मृदुल कराल ।
द्रुम दल शिशिर सुखात सब, सह निदाघ अतिलाल ॥२१८॥

सच्चे मित्र का क्रोध करना भी, अत्यन्त सुखदायी है, (क्रोध करके वह हित की ही शिक्षा देगा)। परन्तु शत्रु की कोमलता भी भयंकर समझनी चाहिये, (वह ऊपर से कोमलता दिखाकर धोखा ही देगा)। देखो ! शीतल होने पर भी शिशिर ऋतु पेड़ के सब पत्तों को सुखाता है, और अत्यन्त निदाघ (धूप) सहाकर भी बसंत—ऋतु वृक्षों को लाल-लाल नवीन पत्तों से पल्लवित कर देता है ॥२१८॥

७९—दुष्ट उपकार नहीं मानता ।

खल नर गुण मानै नहीं, मेटहिं दाता वोप ।
जिमि जल तुलसी देत रवि, जलद करत तेहि लोप ॥२१९॥

दुष्ट मनुष्य उपकारी पुरुषों के उपकार को नहीं मानते, बल्कि दाता के वोप (प्रकाश-यश) को ही, निन्दा करके मिटाना चाहते हैं।

तुलसीदासजी कहते हैं, कि जैसे सूर्य ही समुद्र-नदियों से जल खींच कर बादल को देता है, परन्तु बादल उसे ढँक देता है। अथवा जल दाता तो सूर्य है, परन्तु बादल को लोग जलद कहते हैं ॥२१९॥

८०—बड़े पुरुषों को गिरा दशा में देखकर छोटा न समझो।

समय परे सुपुरुष नरन, लघु करि गनिय न कोय।
नाजुक पीपर बीज सम, बचै तो तरुवर होय ॥२२०॥

बड़े पुरुषों की गिरी परिस्थिति देखकर उन्हें कोई छोटा करके न समझो। पीपल का बीज कितना निर्बल होता है ? परन्तु यदि चोट खाने से बच गया, तो मिट्टी-जल का संयोग पाकर, महान वृक्ष होता है ॥ २२० ॥

होहिं बड़े लघु समय सह, तौ लघु सकैं न काढ़ि।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत से बाढ़ि ॥२२१॥

लघु (गिरे) समय के साथ बड़े पुरुष भी लघु हो जाते हैं, तो भी छोटे लोग उनको निकाल नहीं सकते। कृष्ण-पक्ष रूपी कुसमय आने पर चन्द्रमा दुबला और कुबरा (टेढ़ा) हो जाता है, तो भी तारागणों से बढ़ा तेजवान् रहता है ॥ २२१ ॥

भाव—गिरीदशा होने पर भी, बड़े लोग जहाँ जायेंगे, उनकी मर्यादा होगी। अतः गिरीदशा देखकर बड़ों को लघु जानकर उन्हें उंगली न दिखाओ।

ऊँचहि आपद विभव वर, नीचहि दत्त न होय।
हानि वृद्धि द्विजराज कहँ, नहिं तारागण कोय ॥२२२॥

बडे लोगों के ऊपर आपत्ति आने पर छोटे लोगों के देने से, उनके विशाल वैभव नहीं हो सकता। कृष्ण पक्षीय द्विजराज (चन्द्रमा) को प्रकाश-क्षीणता में तारागण में से कोई (या सब तारे मिलकर भी), उसके प्रकाश को बढ़ा नहीं सकते ॥ २२२ ॥

८१—परोपकार ही स्थायी है।

तुलसी संतन ते सुने, संतत यहै विचार।
तन धन चंचल अचल जग, युग युग पर उपकार ॥२२३॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि सन्तों से सदैव यही विचार की बात मैंने सुना है, कि जगत में तन-धन चंचल नाशवान् हैं, युग-युग (बहुत दिनों तक) परोपकार का फल ही सुख देगा अथवा परोपकार की कीर्ति रहेगी ॥२२३॥

८२—बड़े लोग छोटे के गुण ले लेते हैं, किन्तु छोटे जन बड़े के गुण नहीं ले पाते।

बड़े रतहिं लघु के गुणहिं, तुलसी लघुहि न लेत।
गुंजा ते मुक्ता अरुण, गुञ्जा होत न श्वेत ॥२२४॥

छोटे लोगों के गुणों में, बड़े प्रेम करते हैं (उनसे गुण ले लेते) हैं, परन्तु छोटे नीच लोग बड़ों के गुण नहीं ले पाते। जैसे गुन्जा (घुंघुची) मुक्तामणि के सामने रख देने पर, गुन्जा की लालिमा से मुक्तामणि लाल हो जाता है, परन्तु मुक्तामणि के उजलापन से, गुञ्जा श्वेत नहीं होता ॥ २२४ ॥

८३—दुष्ट का पालना आपत्ति जनक है।

दुरजन आप समान करि, को राखै हित लागि।
तपत तोय सह जाहि पुनि, पलटि बुतावत आगि ॥२२५॥

अपने हित के लिये, दुष्टों को धन-मान देकर और अपने समान सम्पन्न करके कौन रखे? जिस अग्नि के संग में पानी गर्म होकर उष्णता रूपी गुण को प्राप्त होता है, फिर उलट करके उसी आग को वह गर्म पानी बुझा देता है ॥ २२५ ॥

नीच नीचाई नहीं तजत, जो पावहिं सत्संग।
तुलसी चन्दन विटप बसि, बिन विष भये न भुजंग ॥२२६॥

यदि सत्संग भी पा जाँय, तो भी दुष्ट लोग दुष्टता नहीं त्यागते। जैसे शीतल चन्दन के पेड़ पर बसकर भी, साँप विष-रहित नहीं होता ॥ २२६ ॥

दुरजन दरपण सम सदा, करि देखो हिय गौर।
सन्मुख की गति और है, विमुख भये कछु और ॥२२७॥

हृदय में विचार करके देखो, दुर्जन सदैव दर्पण के समान होते हैं। जो सामने से निर्मल हैं, और पीठ पीछे काला कलूटा है ॥ २२७ ॥

भाव—दर्पण के सामने से स्वच्छ रहता और उसमें मुख दिखता है, परन्तु उसकी दूसरी ओर मुख नहीं दिखता। इसी प्रकार दुष्ट सामने बहुत भले मनुष्य बन जाते हैं, परन्तु पीठ पीछे निन्दा करते हैं।

८४—सच्चे मित्र के लक्षण।

मित्र कै अवगुण मित्र को, पर पह भाषत नाहिं।
कूप छाँह जिमि आपनी, राखत आपहिं माहिं ॥२२८॥

कूँआँ अपनी छाया जैसे अपने में ही रखता है, वैसे सच्चा मित्र, अपने मित्र के दोषों को, पराये के सामने नहीं कहता ॥ २२८ ॥

८५—उपदेश।

शिष्य सखा सेवक सचिव, सुतिया सिखवन साँच।
सुनि करिये पुनि परिहरिय, पर मनरंजन पाँच ॥२२९॥

शिष्य, मित्र, सेवक (नौकर), मन्त्री और बुद्धिमान स्त्री की सच्ची सीख को सादर सुनकर, उसके अनुसार करो। परन्तु इन पाँचों की शिक्षायें यदि मनोरंजन मात्र हों, तो त्याग दो, क्योंकि ये मन को प्रसन्न करने के लिये भी बहुत कहते हैं ॥ २२९ ॥

८६—मनुष्य की भारी भूल।

तजत अमिय उपदेश गुरु, भजत विषय विष खान।
चन्द्र किरण धोखे पयस, चाटत जिमि सठ श्वान ॥२३०॥

विवेक-वैराग्यपूर्ण गुरु के अमृतमय उपदेशों को मनुष्य त्यागता है। विष की खानि रूप विषयों को भजता (जपता) है। जैसे रात्रि में चन्द्रमा की किरणे घूल में पड़ने से, पानी के धोखे में मूर्ख कुत्ता उसे चाटता है ॥ २३० ॥

८७—बड़ों के झगड़े के बीच न पड़ो।

तुलसी झगड़ा बड़ेन के, बीच परो मति धाय।
लहै लोह पाहन दोऊ, बीच रुई जरि जाय ॥२३१॥

गोस्वामीजी कहते हैं कि बड़ों के झगड़े के बीच में दौड़ कर न पड़ो। देखो ! लोहा और पत्थर यदि आपस में टक्कर करते हों, बीच में रूई उसे छुड़ाने चले, तो जल जायगी ॥ २३१ ॥

८८—अर्थ-मोक्ष के लिये क्या करना चाहिये।

अर्थ आदि हन परिहरहु, तुलसी सहित विचार।
अंत गहन सब कहँ सुने, सन्तन मत सुख सार ॥२३२॥

अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष[1]—ये चार फल माना है, तिसमें आदि का फल अर्थ; गोस्वामीजी कहते हैं, कि इसकी सिद्धि में विचारपूर्वक हन (हिंसा) त्याग करो; (जान बूझकर शक्ति चले तक किसी को कष्ट न दो)। और अन्तिम फल 'मोक्ष' की प्राप्ति-हेतु, सबके लिये सुना गया 'गहन' (बनवास), चौथे पन जाइय नृप कानन।' यही संतों का मत एवं सुख का सार है ॥ २३२ ॥

गहु उ कार विविचार पद, मा फल हानि विमूल।
अहो जान तुलसी यतन, बिन जाने इव शूल ॥२३३॥

उकार = उपसर्ग, तर्क। विविचार = विशेष विचार। मा = माया निषिद्धकर्म। विमूल = जड़सहित। अहो = आश्चर्यमय जगत्।

१—अर्थ चातुरी ते मिले, धर्म सुश्रद्धा जान।
काम मित्रता ते मिले, मोक्ष भक्ति ते मान ॥

विशेष विचारपूर्वक तर्क को धारण करो और निसिद्धकर्मों के फलों का जड़सहित नष्ट करो, अर्थात् निषिद्ध कर्म न करो। गोस्वामीजी कहते हैं कि यत्नपूर्वक आश्चर्यमय जगत् की पहेली को समझो, इसको ठीक रीत से न जानने से ही यह संशय रूपी शूल लगा है ॥२३३॥

इस दोहे से प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी भी तर्क करना स्वीकार करते हैं, परन्तु छिछिला तर्क नहीं; प्रत्युत विशेष विचार पूर्वक।

तुलसी-पंचामृत

द्वितीय-विन्दु

तुलसी दोहावली से संकलित

१—विषय-विरक्ति तथा राम-अनुरक्ति।

रे मन सबसों निरस ह्वै, सरस राम सों होहि।
भलो सिखापन देत है, निशि दिन तुलसी तोहि ॥ १

अरे मन! संसार के सब प्राणी-पदार्थों से निरस (विरक्त) हो राम (स्व-स्वरूप चैतन्य) में प्रीति कर। तुलसी दास रात-दिन को यही भली शिक्षा देता है ॥ १ ॥

राम प्रेम पथ पेखिये, दिये विषय तन पीठि।
तुलसी केंचुरि परिहरें, होत साँपहू दीठि ॥ २

राम (निज स्वरूप) का प्रेममार्ग तब दिखता है, जब विषयों ओर से पीठ दे-दे—संसार से विमुख हो जाय। तुलसीदासजी क हैं, देखो! केंचुलि के त्याग देने पर, साँप की दृष्टि साफ हो जाती और उसे दिखाई देने लगता है ॥ २ ॥

तुलसी जौ लौं विषय की, सुधा माधुरी मीठि।
तौ लौं सुधा सहस्र सम, राम भगति सुठि सीठि ॥ ३

तुलसीदास जी कहते है, जब तक विषयों की व्यर्थ मधुरता लगती है। तब तक हजारों अमृत तुल्य मिष्ट होने पर भी; राम भ (स्वरूप रति) नितान्त निरस लगती है ॥ ३ ॥

प्रीति राम सों नीति पथ, चलिय राग रिस जीति।
तुलसी संतन के मते, इहै भगति की रीति ॥ ४

राम (स्वस्वरूप चैतन्य) में प्रेम करके तथा आसक्ति (काम) और क्रोध को जीतकर नीति-मार्ग पर चलना—तुलसीदास जी कहते हैं कि कि संतों के मत से— यही भक्ति की रीति है ॥ ४ ॥

तुलसी सुखी जो राम सों, दुखी सो निज करतूति ।
करम वचन मन ठीक जेहि, तेहि न सकै कलि धूति ॥ ५ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं, जो राम (स्वरूप) के चिंतन में सुखी है, वह अपने मन की कुचालों से ग्लानि रखता है। जिसके कर्म वचन, और अन्तःकरण पवित्र हैं, उसको पाप ठग नहीं सकता ॥ ५ ॥

हित सो हित रति राम सों, रिपु से वैर बिहाउ ।
उदासीन सबसो सरल, तुलसी सहज स्वभाउ ॥ ६ ॥

राम (स्व-स्वरूप) में प्रीति हो, मित्र से प्रेम हो, शत्रु से वैर का त्याग हो। पक्षपात-रहित हो, सबसे सरल रहे, तुलसीदास जी कहते हैं, ऐसा सहज स्वभाव रखना चाहिये ॥ ६ ॥

तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार ।
राग न रोष न दोष दुःख, दास भये भवपार ॥ ७ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं, राम (स्वस्वरूप) में ही ममता हो, और संसार के सब प्राणियों से समता रखे। राग, द्वेष, दोष तथा क्लेश का भाव न हो, तो जानो वह जीव संसार से मुक्त है ॥ ७ ॥

वेष विशद बोलनि मधुर, मन कटु कर्म मलीन ।
तुलसी राम न पाइये, भये विषय जल मीन ॥ ८ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं, वेष शुद्ध साधु का-सा हो, बोली भी मीठी हो, परन्तु मन में टेढ़ाई हो, तथा कर्म भी मलीन हो, और विषयरूप जल का मछली बना हो (विषयासक्त हो), तो ऐसे वंचक को राम (स्व-स्वरूप) का साक्षात्कार नहीं होता ॥ ८ ॥

२—अभिमान ही बन्धन है ।

हम हमार आचार बड़, भूरि भार धरि शीश ।
हठि सठ परवश परत जिमि, कीर कोष क्रमि कीश ॥९॥

हम बड़े और हमारे आचार ऊँचे हैं, इस प्रकार अहंकार के भारी बोझा शिर पर रखकर, अज्ञानी लोग हठ पूर्वक बन्धन में पड़े हैं। जैसे तोता, रेशमकीड़े और बन्दर स्वयं बंध जाते हैं ॥ ९ ॥

लाल मिर्ची के लोभ से नलिका यंत्र (घूमने वाली लकड़ी की चरखी) पर तोता बैठकर उसके घूमते ही लटक जाता है और अपने को बँधा हुआ मानकर पकड़ा जाता है। इसी प्रकार रेशम का कीड़ा मुलायम कोश बनाकर उसी में सुख से सोता है, और मनुष्य उसे गरम पानी में डालकर तथा उसे मारकर, रेशम ले लेते हैं। इसी प्रकार सँकरी सुराही में चने के लोभ से बन्दर हाथ डालकर मुट्ठी बाँधता है और सुराही से हाथ न निकलने के कारण बाँध लिया जाता है। इसी भाँति जीव अभिमान और मोह-वश स्वयं बँधता है।

३—अज्ञान-वश जीव की तीन दशायें।

जीव शीव सम सुख सयन, सपने कछु करतूति।
जागत दीन मलीन सोइ, विकल विषाद विभूति ॥ १० ॥

सुख से सोते समय जीव शिव (कल्याण) स्वरूप है, स्वप्न में वह कुछ कार्य करता है। और जाग्रत अवस्था में आते ही, वह दीन मलीन होकर शोक सम्पत्ति से विकल हो जाता है ॥ १० ॥

ध्यान रहे ! यह अज्ञान-दशा की बात कही गयी है। ज्ञानी-पुरुष सदैव शोक-मोह से रहित सुख स्वरूप रहते हैं।

४—संसार-स्वप्न।

सपने होय भिखार नृप, रंक नाक पति होय।
जागे हानि न लाभ कछु, तिमि प्रपंच जिय जोय ॥११॥

स्वप्न में राजा भिक्षुक हो तथा दरिद्र भूपाल हो जाय। तो जागने पर राजा की न हानि है और न दरिद्र का लाभ है। ऐसा ही हृदय से संसार के हानि-लाभ को स्वप्नवत् समझो ॥११॥

५—प्रतिक्षण मृत्यु ।

तुलसी देखत अनुभवत, सुनत न समुझत नीच ।
चपरि चपेटे देत नित, केश गहें कर मीच ॥ १२ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं अरे नीच मानव ! काल तेरी चोटी को हाथों से पकड़ कर नित्य ही घसीटते हुए चपत जमा रहा है। ऐसा देखते, सुनते तथा अनुभव करते हुए भी नहीं समझता ॥ १२ ॥

भाव—मनुष्य नित्य काल के गाल में लीन होता जा रहा है, परन्तु वह अज्ञान-वश विषय-सेवन ही में मस्त है।

६—काल की करतूति ।

करम खरी कर मोह थल, अंक चराचर जाल ।
हनत गुनत गुनि गुनि हनत, जगत ज्योतिषी काल ॥१३॥

संसार में काल रूपी ज्योतिषी हाथ में कर्मरूप खड़िया मिट्टी लेकर, अज्ञान रूपी पट्टीपर, जीवों की देहें और सांसारिक पदार्थों को मिटाता है, हिसाब लगाता है, और पुनः गिन-गिन कर मिटाता है।

७—विषय-विरक्ति बिना ज्ञान निष्फल ।

परमारथ पहिचान मति, लसति विषय लपटानि ।
निकसि चिता से अधजरति, मानहुँ सती परानि ॥१४॥

सत्य की परख हो जाने पर भी, जिसकी बुद्धि विषयों में तथा प्रपंचों में लिपटी है। वह उसी प्रकार प्रतीत होता है, मानो अधजली सती चिता से निकल कर भाग खड़ी हुई है ॥ १४ ॥

शीश उघारन किन कह्यो, बरजि रहे प्रिय लोग ।
घरहीं सती कहावती, जरती नाह वियोग ॥ १५ ॥

उपर्युक्त चिता से कूदकर भागी हुई अधजली सती को शीश उघार कर सती होने को कौन कहा था ? घर के प्रिय लोग तो बल्कि रोक रहे थे। इससे उत्तम तो यही था, कि पति की वियोग-अग्नि में सदा जलती और घर बैठी सती कहलाती ॥ १५ ॥

भाव—पुनीत साधु-वेष धारण करके भी जो विषयासक्त बने हैं, उनको गोस्वामीजी कहते हैं, कि आपको किसने साधु-वेष धारण करने को कहा था। घरवाले प्रिय लोग तो बल्कि रोक रहे थे। इससे उत्तम तो घर बैठे भजन भक्ति-करते, घर बैठे ही साधु कहलाते।

८—आशा दुःख।

तुलसी अद्भुत देवता, आशा देवी नाम।
सेएँ शोक समर्पई, विमुख भये अभिराम ॥१६॥

तुलसीदास जी कहते हैं, एक अद्भुत देवता है, जिसका नाम आशा देवी है। उसकी सेवा करने पर वह शोक देती है, और उससे विमुख हो जाने पर, सुख प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

९—मोह की महिमा।

सोई सेमर तेइ सुवा, सेवत सदा बसंत।
तुलसी महिमा मोह की, सुनत सराहत संत ॥ १७॥

वही सेमल का वृक्ष है और वही सुग्गा-पक्षी हैं। बारम्बार अनुभव कर चुका है कि सेमल के फल में सार नहीं होता। परन्तु तो भी बसंत आने पर सदैव उसपर मड़राता और रस की आशा करता है। तुलसीदासजी कहते है कि मोह की वह महिमा सुनकर, संत भी उसकी सराहना करते हैं कि धन्य रे मोह ॥ १७ ॥

भाव—बारम्बार संसार की सारहीनता को देखते हुए, बारम्बार संसार-शरीर, प्राणी-पदार्थों से ठोकर खाते हुए भी, मोह-मुग्ध मानव संसार की ओर दौड़ता है ॥ १७ ॥

करत न समुझत झूठ गुन, सुनत होत मतिरंक।
पारद प्रगट प्रपंच मय, सिद्धिउ नाउँ कलंक ॥ १८॥

(बारम्बार ठोकर खाने पर भी) विषयासक्त-मानव विषयों के लिये इच्छा-प्रयत्न करता है, उसे सार-हीन नहीं समझता। विषयों की झूठी प्रशंसा सुनते ही, मनुष्य की बुद्धि दीन हो जाती है (विषयों की ओर आकर्षित होने लगती है), यह संसार का विषय-सुख प्रत्य

पारे के तुल्य है, जिसके सिद्ध होने पर भी, उसका नाम कलङ्क ही होता है ॥ १८ ॥

भाव—पारा एक विषैला पदार्थ होता है। उसको खा लेने पर वह जीवन का घातक हो जाता है। यदि उसको सिद्ध कर लिया जाय अर्थात् शोध कर भस्म बना लिया जाय, तो भी उचित मात्रा तथा अनुपात से न खाने पर वह घातक ही सिद्ध होता है।

इसी प्रकार विषय-भोग विषमय हैं। शुद्ध जीवन-निर्वाहिक विषयों का भी यदि उचित मात्रा में विवेक पूर्वक न ग्रहण करे तो वे भी बन्धन-प्रद हो जायंगे—सम्भवतः गोस्वामी जी का यही भाव प्रतीत होता है।

१०—लोभ का प्राबल्य।

ज्ञानी तापस सूर कवि, कोविद गुन आगार।
कहिकै लोभ विडम्बना, कीन्ह न यहि संसार ॥ १९ ॥

ज्ञानी, तपस्वी, शूर, कवि, पण्डित तथा गुणों के धाम—इस संसार में—लोभ ने किसकी तौहीनी नहीं की ? ॥ १९ ॥

भाव—जो लोभ किया, उसीकी तौहीनी हुई।

११—मद-काम का प्राबल्य।

श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचन के नैन सर, को अस लागि न जाहि ॥२०॥

धन-ऐश्वर्य के मद ने किसको टेढ़ा नहीं बनाया ? प्रभुता ने किसको बहरा नहीं बनाया। अज्ञानी जीवों में से ऐसा कौन है, जिसको मृगनयनी नारियों के नेत्र-वाण नहीं लगे हों ? ॥ २० ॥

१२—माया की सेना।

व्यापि रहेउ संसार महँ, माया कटक प्रचण्ड।
सेनापति कामादि भट, दंभ कपट पाखण्ड ॥ २१ ॥

माया की प्रबल फौज संसार में फैली हुई है। उसके सेनापति

काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मद आदि हैं और योद्धा दम्भ, कपट तथा पाखण्ड आदि हैं ॥ २१ ॥

१३—काम, क्रोध, लोभ का प्राबल्य ।

तात तीन अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि विज्ञान निधान कहँ, करहिं निमिष महु क्षोभ ॥२२॥

हे भाई ! काम, क्रोध और लोभ—ये तीन अत्यन्त प्रबल खल हैं। विज्ञान-निधान मुनि के मन में भी (यदि सावधान न रहें तो) क्षण-मात्र में विकार उत्पन्न कर देते हैं ॥ २२ ॥

लोभ के इच्छा दम्भ बल, काम के केवल नारि ।
क्रोध के परुष वचन बल, मुनिवर कहहिं विचारि ॥ २३ ॥

लोभ का बल इच्छा और दम्भ है, काम का बल केवल स्त्री है तथा क्रोध का बल कठोर वचन है—ऐसा श्रेष्ठ मुनि विचार पूर्वक कहते हैं ॥ २३ ॥

१४—मोह की सेना ।

काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह कै धारि ।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद, माया रूपी नारि ॥ २४ ॥

काम, क्रोध, मद, लोभ आदि मोह की अत्यन्त बलशाली सेना है। तिसमें माया की मूर्ति स्त्री तो अत्यन्त भयंकर दुःख देने वाली है ॥ २४ ॥

१५—स्त्री की प्रबलता ।

काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाय ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग काल न खाय ॥ २५ ॥

आग क्या नहीं जला सकती, समुद्र में क्या नहीं डूबेगा ? जगत् में किसको काल ने नहीं खाया और प्रबल स्त्री क्या नहीं कर सकती ? ॥ २५ ॥

१६—स्त्री झगड़े और मृत्यु का कारण।

जनम पत्रिका बरति कै, देखहु मनहिं विचार।
दारुन बैरी मीच के, बीच विराजत नारि ।।२६।।

जन्म-पत्रिका का व्यवहार करके और मन में विचार करके देखो कि कठिन शत्रु और मृत्यु के बीच में स्त्री विराजती है ।। २६ ।।

भाव—जन्म कुण्डली के बारह स्थानों में छठाँ शत्रु का और आठवाँ मृत्यु का माना है और इन दोनों के बीच सातवाँ स्थान स्त्री का माना है स्त्री के कारण कितनों से शत्रुता तथा मृत्यु भी हो जाती है। अतः कल्याण-इच्छुक को स्त्री से बचना चाहिये। यही बात मुमुक्षा नारियों के लिये है। उनके लिये पुरुष की आसक्ति ही शत्रु मृत्यु के समान दुःखदाई है।

दीप शिखा सम युवति जन, मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद, करहि सदा सत्संग ।। २७ ।।

सुन्दर युवती स्त्रियाँ, दीपक-ज्योति के समान हैं, हे मन ! तू उसमें पतिंगा बनकर मत जल। काम, मद को त्याग कर राम (स्वस्वरूप चैतन्य) का भजन कर और सदैव सत्संग कर !! २७ ।।

१७—गृहासक्ति बन्धन।

काम क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुखरूप।
ते किमि जानहि रघुपतिहिं, मूढ़ परे तमकूप ।। २८ ।।

जो काम, क्रोध, मद, लोभ में लीन हैं, दुःखरूपी गृह में आसक्त हैं। वे मूर्ख अन्धकार कूयें में पड़े हैं, वे रघुपति (रघु = इन्द्रिय, पति = चेतन—स्वस्वरूप को अथवा जितेन्द्रिय गुरु-पद) को कैसे जान सकते हैं ? ।। २८ ।।

१८—उत्तरोत्तर विषय-सेवन से कल्याण कहाँ।

ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाइअ बारुनी, कहहु काह उपचार ।। २९ ।।

जो ग्रह से ग्रसित, फिर वायु से पीड़ित हो और उसे पुनः बिच्छू ने डंक मार दिया हो। इसके ऊपर उसे मदिरा पिला दिया जाय, तो कहो, उसकी क्या दवा है ? ॥ २९ ॥

१९—किसको शान्ति नहीं मिलती ?

ताहि कि सम्पति सगुन सुभ, सपनेहुँ मन बिश्राम ।
भूत द्रोह रत मोहवश, राम विमुख रति काम ॥ ३० ॥

जो प्राणियों के द्रोह में तत्पर है, मोह के वश है, राम (स्वरूपज्ञान) से विमुख है और काम-भोग में लीन है। क्या उसको स्वप्न में भी दैवीसम्पत्ति, शुभ-शकुन एवं मन में विश्रान्ति आ सकती है ? ॥३०॥

२०—सन्तोष की महिमा ।

कोउ विश्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिनु ।
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि यतन पचि पचि मरिअ ॥३१॥

हे तात ! स्वाभाविक सन्तोष के बिना क्या कोई शान्ति पा सकता है ? चाहे करोड़ों उद्योग करके, पचि-पचि के मर जाओ, परन्तु क्या जल के बिना, सूखी पृथ्वी पर नावका चलेगी ? ॥ ३१ ॥

२१—गाढ़े दिन का मित्र ही मित्र है ।

कुदिन हितू सो हित सुदिन, हित अनहित किन होइ ।
शशि छबि हर रबि सदन तउ, मित्र कहत सब कोइ ॥ ३२ ॥

बुरे दिनों में जो प्रेम करता है, वही सच्चा मित्र है, अच्छे दिनों में शत्रु-मित्र कोई कुछ भी हो, उसका महत्व नहीं है। सूर्य अपने घर में अर्थात् अमावस्या के दिन चन्द्रमा की शोभा हरण कर लेता है, तो भी सूर्य को सब मित्र[1] कहते हैं। क्योंकि वह आपत्ति में उसका हित करता है, चन्द्रमा को प्रकाश देकर उसे प्रकाशित करता है ॥ ३२ ॥

२२—मित्रता में छल बाधक है ।

मान्य मीत सो सुख चहै, सो न छुए छल छाँह ।
शशि त्रिशंकु कैकेयि गति, लखि तुलसी मन छाँह ॥ ३३ ॥

१—सूर्य का नाम मित्र है ।

तुलसीदासजी कहते हैं कि जो माननीय मित्र से सुख चाहे, वह चन्द्रमा, त्रिशंकु और कैकेयी की दशा विचार कर छल की परछाईं भी न छूवे--जरा भी छल न करे ॥ ३३ ॥

चन्द्रमा—चन्द्रमा गुरु-पत्नी से गमन किया। वह सदैव के लिये सभ्य समाज से तिरस्कृत हुआ।

त्रिशंकु—इन्होंने गुरुवशिष्ठ का अपमान किया। अतः इन्हें चाण्डाल होना पड़ा। विश्वामित्र के तपबल से जब ये सदेह स्वर्ग जाने लगे, तो बीच ही में गिरकर, उल्टे मुख लटकना पड़ा।

कैकेयी—यह अपने पति से छल करके सुख चाही, तो परिणाम में विधवा तथा अपयश का पात्री बनी।

कहिय कठिन कृत कोमलहुँ, हित हठि होइ सहाइ।
पलक पानि पर ओढ़िअत, समुझि कुघाइ सुघाइ ॥३४॥

सच्चा मित्र उसी को कहा जाता है, जो नरम या कठोर कैसा भी काम पड़ने पर हठ करके सहायता करता है। जैसे आँखों पर कोमल चोट होते हुए देखकर पलक रोक लेता है, और शिर या शरीर पर कठिन चोट आते देखकर, हाथ रोक लेता है ॥ ३४ ॥

२३—वैर और प्रेम अन्धे होते हैं।

तुलसी बैर सनेह दोउ, रहित विलोचन चारि।
सुरा सेवरा आदरहिं, निंदहिं सुरसरि बारि ॥ ३५ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि वैर और प्रेम दोनों चारों नेत्र (विवेक-बिचार अन्तर्दृष्टि तथा दोनों बाह्य दृष्टि) के अन्धे होते हैं वैरी अपने शत्रु के गुणों को नहीं देखता, और प्रेमी अपने मित्र के दोष नहीं देखता। वैसे ही इनमें अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं होता, जैसे बाम-मार्गी मदिरा का आदर करते हैं, और पवित्र गंगा-जल की निन्दा करते है ॥ ३५ ॥

२४—प्रेम के लक्षण।

सदा न जे सुमिरत रहहिं, मिलि न कहहिं प्रिय बैन।
ते पै तिनके जाहिं घर, जिनके हिये न नैन ॥ ३६ ॥

जो सदैव स्मरण नहीं करते रहते, और मिलने पर प्रिय बचन नहीं बोलते। उनके घर वे ही जायँगे, जिनके हृदय की आँखें फूटी हैं।

२५—स्वार्थ या अ-स्वार्थ में अच्छाई-बुराई।

हित पुनीत सब स्वारथहि, अरि अशुद्ध बिनु चाड़।
निज मुख मानिक सम दशन, भूमि परे ते हाड़ ॥३७॥

स्वार्थ रहते तक ही, सब वस्तुयें हितकारी एवं पवित्र प्रतीत होती हैं, बिना चाह की वे ही बस्तुयें अपवित्र और शत्रुके समान प्रतीत होती हैं। जैसे जब तक दाँत अपने मुख में रहता है, तब तक मणि तुल्य मूल्यवान माना जाता है, परन्तु वही जब उखड़ कर पृथ्वी पर जा गिरता है, तब अशुद्ध हाड़ कहलाता है ॥ ३७ ॥

२६—कल्याण-प्रद प्रेम-पथ के गामी बिरले।

माखी काक ऊलूक बक, दादुर से भये लोग।
भले ते शुक पिक मोर से, कोउ न प्रेम पथ योग ॥३८॥

जगत् में अधिकांशतः लोग मक्खी, कउआ, उल्लू, बकुला, मेढक के समान बिना हेतु हानि करने वाले, परदोष-दर्शन एवं परनिन्दा कथन रूप मल को खाने वाले, परमार्थ-धर्म की ओर से आँख मूँदे रहने वाले, कपट वेष बनाकर ठगने वाले तथा टर्र-टर्र बकवास करने वाले हो गये हैं। परन्तु जो अच्छे हैं उनमें भी अधिक शुक, कोयल तथा मोर सदृश देखने में सुन्दर परन्तु क्षण में प्रेम तोड़कर भाग जाने वाले, बोलने में मधुर, परन्तु स्वार्थी, शरीर से चमकीले-सुन्दर परन्तु हृदय से क्रूर हैं। कल्याण के प्रेम-पथ पर चलने वाले इनमें कोई नहीं है ॥ ३८ ॥

२७—आधुनिकों में कपट की प्रधानता ।

हृदय कपट वर वेष धरि, वचन कहहिं गढ़ि छोलि ।
अब के लोग मयूर ज्यों, क्यों मिलिये मन खोलि ।।३९।।

अब के लोग मयूर के समान वेष तो बड़ा सुन्दर धारण करते हैं, बात भी खूब गढ़-छोल कर अर्थात् चिकनी-चुपड़ी करेंगे; परन्तु उनके हृदय में कपट भरा रहेगा। फिर ऐसे लोगों से हृदय खोलकर कैसे मिला जाय ? ।। ३९ ।।

२८—कपट का परदा फास ।

चरण चोंच लोचन रँगौ, चलौ मराली चाल ।
छीर नीर बिवरन समय, बक उघरत तेहि काल ।।४०।।

बगुला चाहे पैर, चोंच और नेत्र रंगकर हंस के सदृश बना ले, और उसी की चाल में चले भी। परन्तु पानी-दूध को पृथक्-पृथक् करने के समय, उसकी पोल-पट्टी खुल जायगी ।। ४० ।।

भाव—साधु या सभ्यता का कोई वेष भले बना ले, परन्तु उसके ज्ञान,आचरण से उसका पोल खुल जायगा ।।

२९—कुटिल की कुटिलता नहीं छूटती ।

मिलै जो सरलहिं सरल ह्वै, कुटिल न सहज बिहाय ।
सो सहेतु ज्यों बक्र गति, ब्याल न बिलहिं समाय ।।४१।।

टेढ़ा मनुष्य अपनी टेढ़ाई नहीं छोड़ता, यदि वह किसी सरल व्यक्ति से सरल होकर मिलता है, तो उसमें उसका कोई हेतु समझना चाहिये। जैसे टेढ़ा चलने वाला साँप टेढ़ा होकर बिल में नहीं जा सकता। इसीलिये उसमें घुसते समय वह सीधा होता है, तो इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह सीधा हो गया ।। ४१ ।।

कृष घन सरवहि न देब दुख, मुएहुँ न माँगब नीच ।
तुलसी सज्जन की रहनि, पावक पानी बीच ।।४२।।

तुलसीदासजी कहते हैं कि सज्जन का रहना पानी-आग के बीच होता है। वे थोड़े धन वाले मित्र से माँगकर उसको कष्ट नहीं देना चाहते, ऐसा करने में अग्नि के ताप के समान उन्हें कष्ट होता है। और नीच स्वभाव वाले धनवान से तो वे मरते दम तक नहीं माँगते। क्योंकि ऐसा करना पानी में डूब मरने के समान है। अतः ऐसी स्थिति में सज्जन स्वयं कष्ट सहकर रहते हैं ॥ ४२ ॥

३०—स्वभाव की प्रबलता।

नीच निचाई नहिं तजइ, सज्जन हूँ के संग।
तुलसी चंदन विटप बसि, बिनु त्रिष भये न भुजंग ॥४३॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि नीच लोग अपनी नीचता नहीं छोड़ते, चाहे व संत की ही संगत में क्यों न रहें। चंदन के पेड़ के पास बसकर भी क्या साँप बिष-रहित होता है ? ॥ ४३ ॥

भले भलाई पै लहइ, लह निचाई नीच।
सुधा सराहिअ अमरता, गरल सराहिअ मीच ॥४४॥

अच्छे लोग अपनी अच्छाई से तथा दुष्ट लोग अपनी दुष्टता से शोभा पाते हैं। अमर बना देने के कारण अमृत की प्रशंसा है, और शीघ्र मारडालने के कारण विष की प्रशंसा है (जिसके खाने से तुरन्त मृत्यु न हो वह विष उत्तम कोटि का नहीं माना जाता) ॥ ४४ ॥

मिथ्या माहुर सज्जनहि, खलहिं गरल सम साँच।
तुलसी छुवत पराइ ज्यों, पारद पावक आँच ॥४५॥

सज्जन को असत्य विष के सदृश है, और दुष्ट को सत्य विष तुल्य है। तुलसीदासजी कहते हैं कि सज्जन असत्य का एवं दुष्ट सत्य का स्पर्श करते ही वैसे ही भाग जाते हैं, जैसे आग दिखाते ही, पारा उड़ जाता है ॥ ४५ ॥

३१—सुसंग-कुसंग का परिणाम भेद।

संत संग अपवर्ग कर, कामी भवकर पन्थ।
श्रुति पुराण कवि कोविद, कहहिं सकल सद्ग्रन्थ ॥४६॥

संतों की संगति मुक्ति कर देती है, और कामियों की संगत ससार के पन्थ में कर देती है। ऐसा वेद, पुराण, कवि, पण्डित और सम्पूर्ण सद्ग्रन्थ कहते हैं ॥ ४६ ॥

सुकृत न सुकृती परिहरे, कपट न कपटी नीच।
मरत सिखावन देइ चले, गीधराज मारीच ॥४७॥

मरते दम तक पुण्यवान् पुरुष पुण्य नहीं छोड़ते, और नीच-कपटी लोग अपना कपट नहीं छोड़ते। इस बात की शिक्षा मरते-मरते गीध-राज जटायु और मारीच दे गये। जटायु ने मरते-मरते सीता की रक्षा की और मारीच मरते-मरते राम के शब्दों में 'हा लक्ष्मण !' कहकर, सीता को धोखा दिया ॥ ४७ ॥

३२—सज्जन दुर्जन का भेद।

सुजन सुतरु बन ऊख सम, खल टंकिका रुखान।
परहित अनहित लागि सब, साँसति सहत समान ॥४८॥

सज्जन सुन्दर कपास और ऊख के पेड़ सदृश होते हैं, और खल लोग छेनी और रुखानी के समान होते हैं। ये दोनों समान ही कष्ट सहते हैं। परन्तु सज्जन पराये के हित के लिये सहते हैं, और दुष्ट पराये की हानि के लिये सहते हैं ॥ ४८ ॥

पियहि सुमन रस अलि विटप, काटि कोल फल खात।
तुलसी तरु जीवी युगल, सुमति कुमति की बात ॥४९॥

तुलसीदास जी कहते हैं, कि भंवरा और भील दोनों वृक्षों से निर्वाह लेते हैं, परन्तु भंवरा वृक्षों के फूलों का केवल रस पीता है, और भील पेड़ काटकर उसका फल खाते हैं। यह सुबुद्धि-कुबुद्धि की बात है ॥ ४९ ॥

३३—समय का महत्व।

अवसर कौड़ी जो चुकै, बहुरि दिये का लाख।
दुइज न चंदा देखिये, उदौ कहा भरि पाख ॥५०॥

समय पर कौड़ी खर्च करना यदि चूक जाय, तो पीछे से लाख रुपये देने से क्या होता है ? यदि द्वितीया का चन्दा नहीं देखा गया, तो पाख भर वह उदय होता रहे तो क्या होता है ॥ ५० ॥

एक राजा के यहाँ एक इतर बेचने वाला आया। राजा ने इतर खरीदा। इतर देते-लेते समय उसकी एक बूंद नीचे फर्श पर गिर पड़ी। झट राजा ने अपनी अंगुली से उठा ली। यह बात मन्त्री को अच्छी न लगी और जब इतर वाला राजद्वार से चला गया, तब मन्त्री ने राजा से कहा "आपने इतर की गिरी हुई बूंद को फर्स से उठाकर अपनी बड़ी तौहीनी की। इतर वाला बड़े-बड़े लोगों के यहाँ बेचने जाता है, वह लोगों से आपके विषय में क्या कहेगा ?

पश्चाताप पूर्वक राजा ने कहा गलती तो हो गयी, अब सुधार का क्या उपाय है ? मंत्री ने एक युक्ति सोचकर मार्ग में जाते हुए इतर वाले के पास एक सिपाही दौड़ाया और कहला भेजा कि इतरवाला लौटकर राज-द्वार पर पुनः आ जाय। राजा साहेब उसका स्वागत करना भूल गये हैं। यहाँ के राजा का यह नियम है कि जो हमारे यहाँ इतर बेचने आवे, उसे इतर से नहलाया जाय।

सिपाही-द्वारा यह सन्देश सुनकर इतर वाले ने सिपाही से कहला भेजा कि राजा का कंजूसी स्वभाव देख लिया गया, अब हमें या किसी को इतर में ही डुबा दें, तो भी वे उदार नहीं कहे जा सकते।

सच है, उचित समय पर जो एक कौड़ी खर्च करना चूक जाता है, वह दूसरे समय लाख देने पर भी, उसकी पूर्ति नहीं कर सकता।

३४—भलाई करना बिरले जानते हैं।

ज्ञान अनभले को सबहिं, भले भलेहू काउ।
सींग सूड़ रद लूम नख, करत जीव जड़ घाउ ॥५२॥

बुराई करने का ज्ञान सबको है, भलाई तो कोई बिरला भला मनुष्य ही करता है। मूढ़ जानवर अपने सींग, सूढ़, दाँत, पूँछ और नख से चोट ही पहुँचाते हैं, उससे भलाई करना नहीं जानते ॥५१॥

तुलसी जग जीवन अहित, कतहुँ कोउ हित जानि।
सोषक भानु कृषानु महि, पवन एक घन दानि ॥५२॥

तुलसीदास जी कहते है, कि संसार में जीव के अहित करनेवाले बहुत हैं, कल्याण करने वाले तो कहीं कोई बिरला ही जानो। देखो! जल को सोखने वाले सूर्य, अग्नि, पृथ्वी, पवन—कई हैं, परन्तु देने वाला एक बादल ही है ॥ ५२ ॥

सुनिअ सुधा देखिय गरल, सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सुकृत मराल ॥५३॥

अमृत तो केवल सुना जाता है, देखने में तो विष ही आता है, संसार की सब करतूति कठोर है। कउआ, उल्लू, और बकुले जहाँ-तहाँ (सर्वत्र) देखने में आते हैं, परन्तु हंस तो मानसरोवर ही में मिलते हैं। इसी प्रकार दूसरे की हानि और निन्दा करने वाले संसार में बहुत हैं, परहित करने वाले सन्त तो सत्संग ही में मिलते हैं ॥५३॥

जलचर थलचर गगनचर, देव दनुज नर नाग।
उत्तम मध्यम अधम खल, दशगुन बढ़त विभाग ॥५४॥

जल में विचरने वाले, पृथ्वी पर विचरने वाले तथा आकाश में विचरने वाले प्राणियों और देवता, राक्षस, मनुष्य एवं नाग—इन सब में उत्तम की अपेक्षा मध्यम, मध्यम की अपेक्षा अधम तथा अधम की अपेक्षा नीच दशगुणा अधिक हैं ॥ ५४ ॥

भाव--संसार में उत्तम पुरुष कम हैं।

बलि मिस देखे देवता, कर मिस मानव देव।
मुए मार सुविचार हत, स्वारथ साधन एव ॥५५॥

बलि के बहाने देवताओं को तथा कर (टैक्स) के बहाने राजाओं को देख लिया। ये अच्छे विचार से हीन, मुए को मारने वाले तथा स्वार्थ साधने वाले ही हैं ॥ ५५ ॥

सुजन सकल भल पोच पथ, पापि न परखइ भेद।
करमानाश सुरसरित मिस, विधि निषेध वद वेद ॥५६॥

अच्छे पुरुष (ग्रहण त्याग के लिये,) भले-बुरे दोनों मार्ग बतलाते हैं, जैसे कर्मनाशा और गङ्गा के बहाने वेद विधि और निषेध दोनों प्रकार के कर्म बताते हैं, (कर्मनाशा में नहाने का निषेध और गङ्गा में नहाने की विधि) । परन्तु पापी लोग इस भेद को नहीं समझते । पाप-पुण्य दोनों विधि समझ लेते हैं ॥ ५६ ॥

३५—प्रधान वस्तु है, आधार नहीं ।

मनि भाजन मधु पारई, पूरन अमी निहार ।
का छाड़िय का संग्रहिअ, कहहु विवेक विचार ॥५७॥

शराब से भरा मणियुक्त पात्र तथा अमृत से भरा मृतका के बर्तन को देखकर, और विवेक-विचार करके कहो, किसको त्यागा जाय और किसको ग्रहण किया जाय ? ॥ ५७ ॥

भाव—अच्छी वस्तु साधारण स्थल पर हो तो भी लेना चाहिये। परन्तु अच्छी जगह होने पर भी बुरी वस्तु न ले ।

३६—प्रेम-वैर की तीन श्रेणियां ।

उत्तम मध्यम नीच गति, पाहन सिकता पानि ।
प्रीति परीक्षा तिहुन की, वैर बीतिक्रम जानि ॥५८॥

उत्तम, मध्यम, नीच—तीन प्रकार के प्रेम की परीक्षा, पत्थर बालू और पानी से किया जा सकता है। (उत्तम पुरुष का प्रेम पत्थर-लीक के समान अमिट है, मध्यम मनुष्य का प्रेम बालू की लीक के समान थोड़े समय के लिये है और नीच मनुष्य का प्रेम पानी की लीक के समान है, जो तुरन्त मिटता जाता है।) परन्तु वैर इसके उल्टे जानना चाहिये। ((उत्तम पुरुष का वैर पानी-लीक के समान तुरन्त मिट जाता है, मध्यम मनुष्य का वैर बालू की लीक के समान कुछ समय तक रहता हैं, परन्तु नीच मनुष्य का वैर पत्थर-लीकवत् जीवन पर्यन्त अमिट होकर रहता है) ॥ ५८ ॥

३७—सज्जन-दुर्जन के ग्रहण-त्याग।

पुन्य प्रीति पति प्रापतिउ, परमारथपथ पाँच।
लहहिं सुजन परिहरहिं खल, सुनहु सिखावन साँच॥५९॥

पुण्य, प्रीति, मर्यादा, लौकिक लाभ और परमार्थ-पथ—ये पाँचों तो सज्जन ग्रहण करते हैं, और दुष्ट त्याग देते हैं, यह सच्ची शिक्षा सुनो॥ ५९॥

३८—अपना आचरण सब अच्छा मानते हैं।

तुलसी अपनो आचरन, भलो न लागत कासु।
तेहि न बसात जो खात नित, लहसुनहू को बासु॥६०॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि अपने रहन-सहन किसे नहीं अच्छे लगते? जो सदैव लहसुन खाता है, उसको, उसकी दुर्गन्ध बुरी नहीं लगती॥ ६०॥

३९—भाग्यवान् के लक्षण।

बुध सो विवेकी विमल मति, जिनके रोष न राग।
सुहृत सराहत साधु जेहि, तुलसी ताको भाग॥६१॥

वे ही पण्डित, विवेकी और निर्मल बुद्धि वाले हैं, जिनका किसी से क्रोध-वैर तथा आसक्ति नहीं है। साधुजन जिनको सबका सुहृद (निःस्वार्थ-हितकारी) कहकर प्रशंसा करते हैं, तुलसीदासजी कहते हैं, उन्हीं का सौभाग्य है॥ ६१॥

४०—साधु जन किसकी सराहना करते हैं?

आपु आपु कहँ सब भलो, अपने कहँ कोइ कोइ।
तुलसी सब कहँ जो भलो, सुजन सराहिअ सोइ॥६२॥

अपना-अपना भला सब करना चाहते हैं, कोई-कोई 'अपने कहँ' (अपने इष्ट-मित्रों की) भी भलाई चाहते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं जो सबकी भलाई चाहता है, साधुजन उसी की प्रशंसा करते हैं॥६२॥

४१—संगत की महिमा ।

तुलसी भलो सुसंग तें, पोच कुसंगति सोइ ।
नाउ किन्नरी तीर असि, लोह बिलोकउ लोइ ॥६३॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि सत्संग से मनुष्य अच्छा और कुसं से बुरा हो जाता है । ऐ लोगों ! देखो, वही लोहा नावका में लगक तारने वाला और सितार में लगकर मधुर संगीत का गायन करने वाला होता है, और वही लोहा तीर तथा तलवार में लगकर सबक प्राणघातक होता है ॥ ६३ ॥

गुरु संगति गुरु होइ सो, लघु संगति लघु नाम ।
चार पदारथ में गनैं, नरक द्वार हू काम ॥६४॥

श्रेष्ठ पुरुषों की संगत से मनुष्य श्रेष्ठ हो जाता है और छोटों की संगत से उसी का नाम छोटा हो जाता है । जैसे अर्थ, धर्म, मोक्ष साथ होने से जो काम नरक का द्वार है, वह भी चार पदार्थों गिना जाता है ॥ ६४ ॥

तुलसी गुरु लघुता लहत, लघु संगति परिनाम ।
देवी देव पुकारिअत, नीच नारि नर नाम ॥६५॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि छोटे मनुष्यों की संगत का फल य होता है कि बड़े महत्त्व वाले भी लघुता को प्राप्त हो जाते हैं । नी स्त्री-पुरुषों के नाम होने से देवी-देवता भी भद्दे शब्दों में पुकारे जा हैं । जैसे "रामचन्दरवा, शिवशंकरवा, मधउआ, जानकिया, पा तिया" आदि ॥ ६५ ॥

तुलसी किये कुसंग थिति, होहिं दाहिने बाम ।
कहि सुनि सकुचिअ सूम खल, गत हरि शंकर नाम ॥६६॥

तुलसीदासजी कहते हैं, कि कुसंग में रहने से अच्छे लोग बुरे हो जाते हैं । हरि और शिव के नाम शुभ हैं, परन्तु यही ना जब किसी दुष्ट या कंजूस का पड़ जाता है, तब लोग कहने-सुनने संकोच करते हैं ॥६६ ॥

बसि कुसंग चह सुजनता, ताकी आश निराश।
तीरथ हू को नाम भो, गया मगह के पास ॥६७॥

जो कुसंग में निवास करके सज्जनता चाहता है, उसकी आशा फीकी है। देखो ! मगध[1] के निकट होने से गया तीर्थ का नाम भी गया— 'गया बीता' हुआ ॥ ६७ ॥

राम कृपा तुलसी सुलभ, गंग सुसंग समान।
जो जल परै जो जन मिलै, कीजै आपु समान ॥६८॥

तुलसीदासजी कहते हैं, गंगा और सत्संग दोनों समान हैं। गंगा में चाहे जैसा जल मिले वह अपने समान बना लेती है। इसी प्रकार सत्संग में चाहे जैसा मनुष्य मिले, वह उसे अपने समान बना लेता है। परन्तु यह कार्य राम-कृपा से सहज होता है ॥ ६८ ॥

भाव—अपने आप जीव ही राम है, यह अपने ऊपर जब कृपा करके, अपने कल्याण के लिये, अपने को सत्संग में ले जाय, तभी शुद्ध होगा। यदि अपने से पृथक राम मानकर उसकी कृपा से सत्संग मिलना माने, तो जबतक सत्संग नहीं मिलता, वह दूसरे राम का ही दोष माना जायगा, जो अयुक्त है। इस भावना से मनुष्य में अकर्मण्यता उत्पन्न होगी 'जो राम करेगा सो होगा' ऐसा मानकर मनुष्य आलसी बन जायगा, जो बड़ी हानि है। अतः अपने उद्धार के लिये दूसरे

१—मगध देश गया में बुद्धजी स्वमतानुसार बोध प्राप्त किये। उनका प्रभाव बढ़ा, वहां बौद्धों का तीर्थ स्थान हो गया। शनातन धर्मियों को यह अच्छा नहीं लगा। अतः वहां जाने से लोगों को भड़काने के लिये हिन्दुओं के नेताओं ने प्रचार किया कि मगध देश अशुद्ध है, वहां जो मरेगा वह नीच गति पायेगा। जो काशी मरेगा उसका मोक्ष होगा इत्यादि यह बात पक्षपात पूर्ण है। काशी या मगध कहीं भी हो अच्छे कर्म करने वाले की अच्छी गति और बुरे कर्म करने वाले की बुरी गति होती है। गोस्वामीजी तो यहां केवल दृष्टान्त दिये हैं, उनका भाव उत्तम है।

किसी के भरोसे पर न रहकर स्वयं पुरुषार्थ करके सत्संग में जाना चाहिए और सुधार करना चाहिये। यथा—

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' (उपनिषद्)

पुरुषार्थ-हीन आत्म-लाभ नहीं कर सकते! "दैव-दैव आलसी पुकारा' इत्यादि।

ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुयोग सुयोग।
होहिं कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग ॥६९॥

ग्रह, औषधि, पानी, वायु, वस्त्र—ये सब भी संसार में अच्छी-बुरी संगत पाकर अच्छे-बुरे बन जाते हैं। अच्छे लक्षण वाले पुरुष ही इनकी परख करेंगे ॥ ६९ ॥

आखर जोरि विचार करु, सुमति अंक लिखि लेखु।
योग कुयोग सुयोगमय, जग गति समुझि विशेषु ॥७०॥

हे बुद्धिमान्! अच्छरों को जोड़कर विचार करो और अंकों को लिखकर हिसाब करो, तो ठीक ठीक समझ जाओगे कि संसार की दशा योग से कुयोग तथा सुयोगमयी हो जाती है ॥ ७० ॥

भाव—जैसे 'दया' के पहले 'अ' अच्छर जोड़ देने से अदया होकर अर्थ उलटा हो जाता है और उसके आगे 'रहित' शब्द जोड़ दीजिये, तो हो जायगा 'अदया-रहित'। इसी भाँति १ के आगे०० जोड़ देने से १०० हो जायगा परन्तु १ के पहले ही ०० जोड़ने से, उस एक को भी कोई नहीं गिनेगा। इसी प्रकार अच्छे-बुरे की संगत करने से, लोग भी अच्छे-बुरे हो जाते हैं।

४२—भले का भला ही हो, यह नियम नहीं।

होइ भले के अनभलो, होइ दानि के सूम।
होइ कुपूत सुपूत के, ज्यों पावक में धूम ॥७१॥

अच्छे के भी बुरे होते हैं, दानी के भी सूम होते हैं, सुपुत्र के भी कुपुत्र होते हैं, जैसे प्रकाशमय अग्नि में, अन्धकारमय धूँआ ॥ ७१ ॥

४३—संत-असंत के परीक्षा-प्रकार ।

बिरुचि परखिये सुजन जन, राखि परखिये मंद ।
बड़वानल सोषत उदधि, हर्ष बढ़ावत चंद ॥७२॥

इच्छा किये बिना ही, सन्तों के मिलने मात्र से उनके सहज पवित्र भाव होने से उनकी परीक्षा हो जाती है। परन्तु दुष्ट मनुष्य की परीक्षा तब होती है, जब उसको कुछ दिन निकट रख कर परखा जाय। बड़वानल समुद्र में बहुत दिन रहने के पश्चात् उसे सोषता है, परन्तु चन्द्रमा दर्शन देते ही समुद्र का हर्ष बढ़ाता है ॥ ७२ ॥

४४—नीच की नीचता ।

प्रभु सनमुख भये नीच नर, होत निपट बिकराल ।
रवि रुख लखि दर्पण फटिक, उगिलत ज्वालाजाल ॥७३॥

स्वामी की मनसा पाकर नीच मनुष्य अहंकार में ऐंठते हुए बिलकुल भयङ्कर हो जाते हैं। जैसे दर्पण और स्फटिकशिला सूर्य के किरणों को अपनी ओर पाकर अग्नि की ज्वाला उगलने लगती हैं ॥ ७३ ॥

४५—सज्जन की सज्जनता ।

प्रभु समीप गत सुजन जन, होत सुखद सुविचार ।
लवन जलधि जीवन जलद, बरसत सुधा सुबारि ॥७४॥

स्वामी के निकट सज्जन पुरुष, सबको सुख देने वाले होते हैं; भली-भांति विचार करो। बादल का जीवन खारा-समुद्र है, अर्थात् खारे समुद्र के जल से ही बादल बनता है, परन्तु वह (बादल) दूसरों के लिये अमृतमय मीठा और स्वच्छ जल बरसाता है ॥ ७४ ॥

नीच निवारहिं निरस तरु, तुलसी सींचहिं ऊख ।
पोषद पयद समान सब, बिष पियूष के रूख ॥७५॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि नीच लोग रसहीन पेड़ को तो खेत से उखाड़-फेंकते हैं, और रसयुक्त ऊख को सींचते हैं। परन्तु बादल पानी बरसा कर, विष-अमृत सभी प्रकार के वृक्षों को पोषता है ॥ ७५ ॥

भाव—महान् पुरुष समदर्शी होते हैं।

बरसि बिश्व हरषित करत, हरत ताप अघ प्यास।
तुलसी दोष न जलद को, जो जल जरै जवास ॥७६॥

बादल पानी बरसा कर संसार को प्रफुल्ल करता है और गर्मी, कष्ट एवं प्यास को हरण कर लेता है। तुलसीदास जी कहते हैं, यदि उसके जल से जवास (भड़-भाड़—कँटेला वृक्ष) जल जाता है, तो बादल का कोई दोष नहीं है ॥ ७६ ॥

भाव—विचारवान् पुरुष अपने आचरण और भाषण से संसार को सुख देते हैं। यदि इससे ईर्ष्यालु मनुष्य जल मरता है, तो उनका कोई दोष नहीं।

अमर दानि जाचक मरहिं, मरि मरि फिर फिर लेहिं।
तुलसी जाचक पातकी, दातहि दूषन देहिं ॥७७॥

दानी अमर रहता है अर्थात् उसका यश अमर रहता है, माँगने वाला मरता है, यानी माँगना मरने के समान है। माँगने वाला मर-मर कर फिर-फिर माँगता और लेता है। तुलसीदास जी कहते हैं, तो भी माँगने वाला पापी दाता को दोष ही देता है ॥ ७७ ॥

४६—नीच-निन्दा।

लखि गयन्द लै चलत भजि, स्वान सुखानो हाड़।
गज गुन मोल अहार बल, महिमा जान कि राड़ ॥७८॥

हाथी को देखकर, कुत्ता सूखे हाड़ को लेकर भाग चला। वह समझा, हाथी हमारा हाड़ छीन न ले। हाथी के गुण, मूल्य, आहार, शक्ति तथा महिमा को मूर्ख कुत्ता क्या जाने ? ॥ ७८ ॥

भाव—नीच मनुष्य डरकर बड़ों की इसलिये निन्दा करता है, कि हमारी मान-बड़ाई या भोग-सुख को यह ले-न-ले। वह यह नहीं समझता—कि बड़े पुरुष इसको तुच्छ समझते हैं।

४७—सज्जन की महिमा।

कै निदरहु कै आदरहु, सिंहहि स्वान सियार।
हरष बिषाद न केसरिहि, कुंजर गंजनिहार ॥७९॥

स्यार-कुत्ते सिंह का चाहे अपमान करें और चाहे सम्मान करें। हाथी को मर्दन करने वाले सिंह को, इसमें हर्ष-शोक नहीं होता। वह कुत्ते स्यार जैसे तुच्छ प्राणी की ओर देखता नहीं ॥ ७९ ॥

भाव—महान् पुरुष नीचों-द्वारा अपमान निन्दा तथा सम्मान पाकर फूलते-पचकते नहीं।

४८—दुष्टों का स्वभाव।

खड़ो द्वार न दै सकैं, तुलसी जे नर नीच।
निंदहि बलि हरिचन्द को, का कियो करन दधीच ॥८०॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जो दुष्ट मनुष्य द्वार पर खड़े मंगते को चुटकी नहीं दे सकते हैं, वे महान् दानी राजा बलि और राजा हरिश्चन्द्र की निन्दा करते है और कहते है—कर्ण तथा दधीच ने क्या उत्तम काम किया ? ॥ ८० ॥

४९—दुष्टों की निन्दा से उत्तम पुरुषों की हानि नहीं।

ईश शीश विलस विमल, तुलसी तरल तरंग।
श्वान सरावग के कहें, लघुता लहै न गंग ॥८१॥

तुलसीदासजी कहते है कि जिस गंगा को निर्मल तरल तरंगे शिव के शीश पर विलसती है। कुत्ते और सरावगियों-वाममार्गियों की निन्दा करने से, उस गंगा की महिमा घटती नहीं ॥ ८१ ॥

भाव—जिन महापुरुषों को बड़े-बड़े साधु सज्जन शिरमुकुट मानते है। कोई दुष्ट उनकी निन्दा करे, तो उनकी महिमा घटेगी नहीं ॥

तुलसी देवल देव को, लागे लाख करोरि।
काक अभागे हगि भरयो, महिमा भई कि थोरि ॥८२॥

तुलसीदासजी कहते है कि जिन देवताओं के मन्दिर बनवाने में लाखों-करोड़ों रुपये लगे हों। यदि अभागे कउए उसमें टट्टी करके भर दिये हों, तो इससे देव-मन्दिर की महिमा क्या घट जायगी ? ॥ ८२ ॥

भाव—दुष्टजन यदि महापुरुष को गाली दें, तो महापुरुषों की महिमा कम नहीं होती।

५०—गुणों का ही मूल्य है, दूसरों के आदर अनादर का नहीं ।

निज गुन घटत न नाग नग, परखि परिहरत कोल ।
तुलसी प्रभु भूषन किये, गुंजा बढ़ै न मोल ।।८३।।

तुलसीदासजी कहते है कि बनवासी कोल-भील गजमुक्ता को देखकर (निष्प्रयोजन जानकर) फेक देते है, परन्तु इससे उसका मूल्य कम नहीं हो सकता। और श्रीकृष्ण जी ने गुंजा (घुंघुची) का गहना बनाकर पहने थे, तो क्या इससे गुंजा का मूल्य बढ़ गया ? कदापि नहीं ।। ८३ ।।

५१—उत्तम पुरुषों के महत्व को कोई नहीं पा सकता ।

राकापति षोड़स उगहिं, तारागण समुदाय ।
सकल गिरन दव लाइये, रवि बिनु राति न जाय ।।८४।।

ताराओं के समूह सहित, सोरहों कला युक्त चाहे चन्द्रमा उदित हो, और सम्पूर्ण पवतों पर चाहे आग लगा दो, तो भी सूर्य उदय हुए बिना, रात नहीं जा सकती ।। ८४ ।।

५२—नीचों-द्वारा की हुई निन्दा स्तुति का महत्त्व नही ।

भलो कहहिं बिनु जानेहू, बिनु जाने अपवाद ।
ते नर गादुर जानि जियँ, करिय न हरष विषाद ।।८५।।

जो बिना जाने ही दूसरे की प्रशंसा करते है, और बिना जाने ही किसी की निन्दा करते है। उन मनुष्यों को उसी मुख से खाने और टट्टी करने वाले गादुर के समान जानकर, हृदय में हर्ष-शोक न करो ।। ८५ ।।

५३—ईर्ष्या करने वाले का कभी कल्याण नहीं ।

पर सुख सम्पति देखि सुनि, जरहिं जे जड़ बिनु आगि ।
तुलसी तिनके भागते, चलै भलाई भागि ।।८६।।

पराये की सुख-सम्पति देखकर जो मूर्ख बिना आग के ही (इर्ष्या

में) जलने लगते हैं। तुलसीदासजी कहते है, उनके भाग्य से भलाई भाग चलती है। अर्थात् उनका कल्याण नहीं होता ॥ ८६ ॥

५४ — निन्दक का मुंह काला होता है।

तुलसी जे कीरति चहहिं, पर कीरति को खोय।
तिनके मुँह मसि लागि हैं, मिटहि न मरि हैं धोय ॥८७॥

तुलसीदासजी कहते है कि जो निन्दाद्वारा दूसरे की कीर्ति नष्ट करके, अपनी कीर्ति चाहते है। उनके मुख में ऐसी स्याही लगेगी, कि उसे धोते-धोते मर जाने पर भी, वह नहीं मिटेगी ॥ ८८ ॥

५५—व्यर्थ अभिमान का कुपरिणाम।

तन गुन धन महिमा धरम, तेहि बिन जेहि अभिमान।
तुलसी जियत बिडम्बना, परिनामहु गत जान ॥८८॥

सुन्दर शरीर, सद्गुण, अधिक धन, कीर्ति तथा धर्म में प्रेम हुए बिना ही जिसे व्यर्थ अभिमान है। तुलसीदासजी कहते है कि ऐसे मनुष्य का जीते तक अयश होता है, और अन्तकाल में दुर्गति होती है ॥ ८८ ॥

५६—छोटा बनकर रहना उत्तम है।

सास ससुर गुरु मातु पितु, प्रभु भये चहै सब कोय।
होनो दूजी ओर को, सुजन सराहिय सोय ॥८९॥

सास, ससुर, गुरु, माता, पिता और स्वामी बनकर शासन करना, सेवा कराना सभी चाहते हैं। परन्तु इसकी दूसरी ओर बहू, दामाद, शिष्य, कन्या, पुत्र तथा दास बनकर नम्रता पूर्वक शासन मानना और सेवा करना जो चाहते हैं, वे ही प्रशंसनीय है ॥ ८९ ॥

५७—विवेकी स्वाभाविक पूज्य होते हैं।

सठ सहि साँसति पति लहत, सुजन कलेश न कायँ।
गढ़ि गुढ़ि पाहन पूजिये; गंडकि शिला सुभाय ॥९०॥

दुष्टजन नाना कष्ट सहकर प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, परन्तु सज्जन विवेकी पुरुष को जरा भी कष्ट उठाये बिना सहजिक प्रतिष्ठा मिलती है। जैसे साधारण पत्थर गढ़-छीलकर तथा मूर्ति बनाकर लोग पूजते है, और गण्डकी नदी के शालिग्राम पत्थर स्वाभाविक पूजते हैं॥ ९० ॥

५८—राजदरबार की निन्दा।

बड़े विबुध दरबार तें, भूमि भूप दरबार।
जापक पूजक पेखियत, सहत निरादर भार ॥९१॥

देवताओं के दरबार से पृथ्वी के राजाओं का दरबार बड़ा है। क्योंकि राजद्वार पर जाप और पूजा करने वालों को भी अपमान का बोझा सहते देखा जाता है॥ ९१ ॥

५९—छल कपट बुरे हैं।

बिनु प्रपंच छल भीख भलि, लहिय न दियें कलेश।
बावन बलि सो छल कियो, दियो उचित उपदेश ॥९२॥

छल-प्रपंच किये बिना भिक्षा अच्छी हैं, कष्ट देकर भिक्षा नहीं लेना चाहिये। बावन ने राजा बलि से छल करके मानो सबको अच्छा उपदेश दिया। छल करने से ही राजबलि के बावनजी द्वारपाल बने॥ ९२ ॥

भलो भले सों छल किये, जन्म कनौड़ों होय।
श्रीपति शिर तुलसी लसति, बलि बावन गति सोय ॥९३॥

अच्छे आदमी यदि अच्छे आदमी के साथ छल करते हैं, तो भी जन्म कलंकित हो जाता है और जीवनपर्यन्त दबकर रहना पड़ता है! बिष्णु ने वृन्दा से छल किया, तो वृन्दा तुलसी होकर विष्णु के शिर पर रहती है। यही दशा बावन की हुई, बावन ने बलि से छल किया; तो बलि का द्वारपाल बनना पड़ा॥ ९३ ॥

बिबुध काज बावन बलिहि, छलो भलो जिय जानि।
प्रभुता तजि बश भे तदपि, मन गयी न गलानि ॥९४॥

बावन ने अपने मन में अच्छा जानकर, देवताओं का काज सुधारने के लिये, राजा बलि को छला। परिणाम में यह हुआ कि बावन जी अपनी प्रभुता त्यागकर, राजा बलि के वश हो गये (उनके द्वारपाल बने) तो भी उनके मन की मलीनता (छल करने के कारण) नहीं मिटी ॥ ९४ ॥

६०—सीधों को दुष्ट दुःख देते हैं।

सरल वक्र गति पंच ग्रह, चपरि न चितवत काहु।
तुलसी सूधे सूर शशि, समय विडंवित राहु ॥९५॥

तुलसीदास जी कहते हैं, कि सीधी-टेढ़ी चाल चलने वाले मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि—इन पाँच ग्रहों को राहु शीघ्र नेत्र उठाकर देखता भी नहीं। परन्तु साधे सूर्य-चन्द्रमा को समय-समय से कष्ट देता है ॥ ९५ ॥

भाव – टेढ़े से सब डरते हैं और सीधे को सब सताया करते हैं।

६१—दुष्टों की चाल।

खल उपकार विकार फल, तुलसी जान जहान।
मेढुक मर्कट वनिक बक, कथा सत्य उपखान ॥९६॥

तुलसीदास जी कहते हैं, कि यह बात सारा संसार जानता है कि दुष्टों का उपकार करने का परिणाम बुरा ही होता है। मेढक, बन्दर, बनिया तथा बकुला की कथा सत्योपाख्यान नामक ग्रन्थ में उदाहरण स्वरूप लिखी है ॥ ९६ ॥

मेढक—एक मेढक अपने पड़ोसी मेढक के कुटुम्ब का नाश कराने के लिये एक साँप बुला लाया और सोचा कि यह विरोधी मेढकों को खाकर प्रसन्न होगा। परन्तु उस साँप ने विरोधी मेढकों को खाकर उसको भी खाने दौड़ा, जो उसे बुला ले गया था। वह भाग कर किसी प्रकार अपनी जान बचायी।

बन्दर—एक बन्दर किसी घड़ियाल से मित्रता की। बन्दर नाना प्रकार के फल ला-ला कर घड़ियाल को खिलाता रहा। एक दिन

अपनी स्त्री के कहने से घड़ियाल बन्दर को अपनी पीठपर बैठाकर, छल करके पानी में लाया, और उसके कलेजा को निकालना चाहा। बन्दर चालाक था, उसने कहा 'कलेजा तो मैं घर रख आया हूँ।' मूर्ख घड़ियाल बन्दर को पानी में से पृथ्वी पर लाकर छोड़ दिया कि कलेजा ले आओ। बन्दर अवसर पाकर भाग खड़ा हुआ और अपनी जान बचायी।

बनिया——एक बनिया और राजा से मित्रता थी। राजा ने एक दिन बनिया से कहा कि मन्त्र सिद्ध करने के लिए, मुझे एक स्त्री की पूजा करनी है। बनिया ने राजा के पास अपनी स्त्री भेज दी। वह उस पर मोहित हो गया, और उसके साथ बलात्कार किया। इसमें बनिया बड़ा दुखी हुआ।

बकुला——एक बकुला किसी मनुष्य को धन बताया। वह मनुष्य धन पाकर, बकुले को भी मार डाला। वह मनुष्य सोचा कि यह और किसी को बता देगा।

उपर्युक्त दृष्टान्त कल्पित हैं। सिद्धान्त यह है कि दुष्टो से प्रेम-वैर न करो, उनसे दूर रहो।

तुलसी खल बानी मधुर, सुनि समुझिय हिय हेरि।
राम राज बाधक भई, मूढ़ मन्थरा चेरि ॥९७॥

तुलसीदास जी कहते हैं, कि दुष्ट की मीठी बात सुनकर ठहरकर हृदय में विचार करो (तुरन्त विश्वास न कर लो)। देखो ! मूर्ख दासी मन्थरा कपट भरी मीठी बात सुनाकर, और कैकेयी की बुद्धि को फेर कर, राम के राज्याभिषेक में बाधक हो गयी ॥ ९७ ॥

नीच गुड़ी ज्यों जानिबो, सुनि लखि तुलसी दास।
ढील दिये गिर परत महि, खैंचत चढ़त अकाश ॥९८॥

तुलसीदासजी कहते हैं, कि देख-सुन कर नीच मनुष्यों को पतंग के समान जानो। जो ढीला कर देने से पृथ्वी पर गिर पड़ता है और खैचने पर आकाश पर चढ़ता है ॥ ९८ ॥

भाव—नीच मनुष्य को डाँट देने पर वे नम्र हो जाते हैं और सम्मान करने पर शिर पर चढ़ते हैं। परन्तु यह राजनीति है, साधुनीत नहीं।

भरदर बरसत कोस सत, बचै जे बूँद बराह।
तुलसी तेउ खल बचन सर, हए गये न पराह ॥९९॥

अत्यन्त वर्षा होते समय में, सौ कोस तक चल कर भी, जो अपने को बूंद से बचाकर, नहीं भीगता। तुलसीदासजी कहते हैं, वे ही पुरुष, दुष्टों के निन्दापूर्ण वचन-वाणों से मारे जाते हैं, भागकर निकल नहीं पाते ॥ ९९ ॥

भाव—दुष्टों की निन्दा से कोई नहीं बचता।

पेरत कोल्हू मेलि तिल, तिली सनेही जनि।
देखि प्रीति की रीति यह, अब देखिबी रिसानि ॥१००॥

तिल में तेल है, यह जानकर तिलों का स्नेही (प्रेमी) तेली, तिलों को कोल्हू में डालकर पेरता है। यह तो प्रेम का व्यवहार देखा गया, अब उसके क्रोध का व्यवहार देखना है ॥ १०० ॥

भाव—जब प्रेम के व्यवहार में तेली तिल को पेर डाला, तब क्रोध में आकर न जाने क्या करेगा ? इसी प्रकार दुष्ट जन अनुकूल बनकर भी कष्ट देते हैं। फिर प्रतिकूल बनकर जो करें सो थोड़ा है।

सहवासी काचो मिलहि, पुरजन पाक प्रवीन।
कालछेप केहि मिलि करहि, तुलसी खग मृग मीन ॥१०१॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि पक्षी, मृगा और मछली किससे मिल-कर अपना समय बितावें ? एक ही स्थान में रहने वाले या एक ही आकाश में विचरने वाले बाज, एक ही स्थान में रहने वाले बाघ-सिंह तथा एक ही जल में रहने वाले घड़ियाल या बड़ी मछली आदि कच्चे ही खा जाते हैं और ग्राम वाले नगरवासी मनुष्य, इन्हें पकाकर खा जाते हैं ॥ १०१ ॥

भाव—दुर्बल का निर्वाह होना बड़ा कठिन है।

परद्रोही परदार रत, पर धन पर अपवाद।
ते नर पामर पाप मय, देह धरे मनुजाद ॥१०२॥

दूसरे का द्रोह करने वाले, परस्त्री-परधन तथा परायी निन्दा में जो प्रेम रखने वाले हैं, वे नीच पापरूप मनुष्य, नर-देह धारण किये हुए भी, राक्षस हैं ॥ १०२ ॥

६२—कपटी को परखना कठिन।

बचन वेष क्यों जानिये, मन मलीन नर नारि।
सूपनखा मृग पूतना, दशमुख प्रमुख विचारि ॥१०३॥

किसी के वचन या वेष से कैसे जानोगे कि इस नर या नारी का मन मलीन है। शूर्पणखा, मारीच, पूतना और रावण, ऐसे मुख्य-मुख्य दृष्टान्तों पर विचार करो। इनकी बोली और वेष मधुर थे। परन्तु निपट छली थे ॥ १०३ ॥

भाव—दुष्टों को शीघ्र परख पाना कठिन है।

हँसनि मिलनि बोलनि मधुर, कटुकरतब मन माहिं।
छुवत जो सकुचइ सुमति सो, तुलसी तिन्ह की छाँहि॥ १०४॥

जिनके हंसना, मिलना, बोलना—सब मीठे हैं, परन्तु मन के कर्तव्य कटु-कपट पूर्ण है। तुलसीदासजी कहते हैं कि उनकी छाया को भी छूने में जो संकोच करता है, वही बुद्धिमान है ॥ १०४ ॥

भाव—कपटी के फन्दे से बचो।

६३—कपट ही दुष्टता है।

कपट सार सूची सहस, बाँधि वचन परवास।
कियो दुराव चहै चातुरी, सो सठ तुलसीदास ॥१०५॥

कपट रूपी लोहे की हजारों सूइयां, मीठे वचन रूपी वस्त्रों में चतुरता से परवास (ढंक) कर जो छिपाना चाहता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि वह मूर्ख है ॥ १०५ ॥

वचन विचार अचार तन, मन करतब छलछूति।
तुलसी क्यों सुख पाइये, अन्तरजामिहि धूति ॥१०६॥

जिसके वचन, विचार, आचरण, शरीर, मन और कर्तव्य में कपट की छूत लगी है। अर्थात् जो सब प्रकार कपटी है। तुलसीदासजी कहते है, वह अन्तर्यामी अपनी अन्तरात्मा को ठगकर, कैसे सुख-शान्ति पा सकता है ? ॥ १०६ ॥

सारदूल को स्वांग करि, कूकर की करतूति।
तुलसी तापर चाहिये, कीरति विजय विभूति ॥१०७॥

सिंह का-सा वेष बनाकर, लोग कुत्ते का-सा कर्तव्य करते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि तिसपर भी लोग यश, विभूति और ऐश्वर्य चाहते हैं ॥ १०७ ॥

बड़े पाप बाढ़े किये, छोटे करत लजात।
तुलसी तापर सुख चहत, विधिसों बहुत रिसात ॥१०८॥

लोग बढ़-बढ़ कर भयंकर पाप तो करते हैं, परन्तु छोटे पाप करने में लज्जा करते हैं। (जैसे एक लोहे की सूई चुराना पाप समझते हैं, परन्तु व्यापार में दूसरे को ठगने में, नौकरशाही में घूस लेने में बुरा नहीं मानते। अथवा बिना स्नान किये भोजन करने में तो पाप मानते और रात दिन चोरी-हिंसा, व्यभिचार मांस-मद्यादि-भक्षण करते रहते हैं।) तुलसीदासजी कहते हैं कि तिसपर भी लोग सुख चाहते हैं, और न मिलने पर विधाता पर रोष प्रकट करते हैं ॥ १०८ ॥

६४—दुःख मूल-अविवेक।

देश काल करता करम, वचन विचार विहीन।
ते सुरतरु तर दारिदी, सुरसरि तीर मलीन ॥१०९॥

देश, काल, कर्ता, कर्म, वचन के विचार से जो रहित हैं। वे कल्प-वृक्ष के नीचे भी दरिद्र और गंगा के निकट भी पापी बने रहेंगे ॥१०९॥

भाव—किस देश-काल में कैसे रहना चाहिये, कैसे कर्म करना

या वचन बोलना चाहिये ?—इसके विचार से जो रहित हैं वे कभी सुखी और शुद्ध नहीं हो सकते। कर्ता-कर्म के विषय में व्याकरण सम्बन्धित अर्थ गौण हैं।

साहसही कै कोप वश, किये कठिन परिपाक।
सठ संकट भाजन भये, हठि कुजाति कपि काक ॥११०॥

दुःसाहस और क्रोध वश कर्म करने से उसका फल भयंकर होता है। हठ पूर्वक काम करने से मूर्ख और नीच बालि तथा जयन्त दुःखों के पात्र बने ॥ ११० ॥

राज करत बिनु काज ही, करहिं कुचालि कुसाज।
तुलसी ते दशकन्ध ज्यों, जइहैं सहित समाज ॥१११॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जो राज्य करते हुए निष्प्रयोजन ही कुसाज सजकर, कुचाल चलते हैं। वे रावण के समान समाज-सहित नष्ट हो जायंगे ॥ १११ ॥

राज करत बिनू काज ही, ठटहिं जे कूर कुठाट।
तुलसी ते कुरराज ज्यों, जइहैं बारहबाट ॥११२॥

जो दुष्ट राज्य करते हुए, बिना हेतु के बुराई करने लगते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, वे दुर्योधन की भांति बारहबाट हो जायंगे, (समूल नष्ट हो जायंगे) ॥ ११२ ॥

६५—बिपरीत बुद्धि विनाश का लक्षण।

सभा सुजोधन की सकुनि, सुमति सराहन योग।
द्रोन विदुर भीषम हरिहि, कहहिं प्रपंची लोग ॥११३॥

दुर्योधन की सभा में दुष्ट-स्वभाव-प्रिय शकुनि ही बुद्धिमान, प्रशंसा योग्य माना जाता था। गुरु-द्रोणाचार्य, दूरदर्शी-विदुर, इन्द्रियजित भीष्म, नीति-निपुण श्रीकृष्ण को लोग प्रपंची कहते थे ॥ ११३ ॥

पांडु सवन के सदसि ते, नीको रिपु हित जानि।
हरिहर सम सब मानियत, मोह ज्ञान की बानि ॥११४॥

पाण्डव की सभा के लोग द्रोणाचार्य तथा भीष्म को विष्णु-शिव के समान ही पूज्य मानते थे। यद्यपि यह भली-भाँति जानते थे कि ये लोग शत्रु (दुर्योधन) के मित्र हैं, उनके सेनापति हैं। अज्ञान और ज्ञान के स्वभाव का यही लक्षण ही होता है। दुर्योधन अज्ञानी है, पाण्डव ज्ञानी ॥ ११४ ॥

हित पर बढ़इ विरोध जब, अनहित पर अनुराग।
राम विमुख विधि वाम गति, सगुन अघाइ अभाग ॥११५॥

कल्याण करने वाले से जब वैर किया जाता है और हानि करने वाले से जब प्रेम किया जाता है। तब समझना चाहिये कि राम विमुख हैं (ज्ञान हरा गया) और कर्तव्य टेढ़े हैं, और यही अपने दुर्भाग्य के भरपूर अपशकुन हैं ॥ ११५ ॥

सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख, जो न करइ शिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवशि होइ हित हानि ॥११६॥

स्वाभाविक भलाई करने वाले मित्र, गुरु और स्वामी की सीख मानकर और उसे शिर पर धारण कर, जो नहीं करता है। वह परिणामतः हृदय में भरपेट पछताता है, और उसके हित की अवश्य हानि होती है ॥ ११६ ॥

भरुहाए नट भाँट के, चपरि चढ़े संग्राम।
कै वै भाजे आइहैं, कै बाँधे परिनाम ॥११७॥

यदि प्रशंसक भाँटों के बढ़ावा देने से, नाचने वाले नट सहसा संग्राम में चढ़ेंगे, या तो वे समय पर लड़ाई से भाग खड़े होंगे या बाँध कर कैद कर लिये जावेंगे ॥ ११७ ॥

भाव—किसी के बढ़ावा देने से विवेक-विरुद्ध, अपनी शक्ति योग्यता के विपरीत कार्य न करे, नहीं तो परिणाम भयंकर होगा।

लोक रीति फूटी सहहिं, आँजी सहइ न कोइ।
तुलसी जो आँजी सहहिं, सो अँधेरो न होइ ॥११८॥

संसार का ऐसा व्यवहार है, कि आँखों के फूटने का कष्ट तो सह लेंगे, परन्तु अंजन लगाने का कष्ट कोई नहीं सहेंगे। तुलसीदासजी कहते हैं जो अंजन लगाने का कष्ट सह लेते हैं, वे अन्धे नहीं होते।११८

भाव—हितकारी के उपदेश तथा साधन-संयम के कष्ट लोग नहीं सह पाते। परिणाम में दुःख भोगते हैं।

६६—लड़ो न, क्षमा करो।

सुमति विचारहि परिहरहि, दल सुमनहुँ संग्राम।
सकुल गये तन बिनु भये, साखी जादो काम ॥११९॥

पत्ते-फूलों-द्वारा भी युद्ध करना अच्छा नहीं है, ऐसा विचार कर बुद्धिमान लड़ाई करना सर्वथा त्याग देते हैं। इसमें उदाहरण यदुकुल और काम का है। पत्तों-द्वारा लड़ाई करने से पूरे यदुकुल का नाश हुआ, और फूलों का बाण कामदेव ने महादेव को मारा था; परिणाम यह हुआ कि महादेव के कोप से काम भस्म होकर, अंग-रहित 'अनंग' हुआ, ऐसा माना है ॥ ११९ ॥

कलह न जानब छोट करि, कलह कठिन परिनाम।
लगति अगिनि लघु नीच गृह, जरत धनिक धन धाम ॥१२०॥

वैर और झगड़ा-लड़ाई को छोटा करके मत समझो, इसका परिणाम बड़ा भयावह होता है। किसी दरिद्र की छोटी-सी झोपड़ी से आग लगती है, और बढ़ते-बढ़ते धनियों के घर धन जल जाते हैं ॥१२०॥

क्षमा रोष के दोष गुन, सुनि मन मानहिं सीख।
अविचल श्रीपति हरि भए, भूसुर लहै न भीख ॥१२१॥

हे मन! क्षमा और क्रोध के गुण-दोष सुन करके शिक्षा को मानो। ब्राह्मण भृगुमुनि के क्रोध से मारी हुई लात को विष्णु ने सहन किया, तो वे अविचल लक्ष्मी के पति हुए और एक ब्राह्मण भृगु के क्रोध के फल में बेचारे ब्राह्मण लोग आज भी ठीक से भिक्षा नहीं पाते ॥ १२१ ॥

बोल न मोटे मारिये, मोटी रोटी मारु।
जीति सहस सम हारिबो, जीते हार निहारु ॥१२२॥

किसी को तीखे वचन न कहो, बल्कि उसकी भरपेट सेवा-सहायता करके, उसे अपने वश करो। ऐसा हारना विजय के समान है, चालीचलौज करके जीतना, अपनी हार समझो॥ १२२॥

जो परि पाय मनाइये, तासों रूठि विचारि।
तुलसी तहाँ न जीतिये, जहँ जीतेहू हारि ॥१२३॥

जिन माता-पिता, स्वामी, बड़े-बूढ़ों एवं साधु-गुरुजनों के पैर पकड़कर, उन्हें मनाया जा सकता है, बहुत विचार करके ही उनसे रूठना चाहिये। तुलसीदासजी कहते हैं कि जहाँ जीतने से भी हार है, वहाँ जीतने की चेष्टा नहीं करनी चाहिये॥ १२३॥

जूझे ते भल बूझबो, भली जीत ते हार।
डहके ते डहकाइबो, भलो जो करिय विचार ॥१२४॥

भली-भाँति विचार किया जाय, तो यही प्रतीत होगा कि लड़ने से समझौता-समता करना अच्छा है, और जीतने से हारना अच्छा है, एवं दूसरों को ठगने से स्वयं ठगा जाना अच्छा है॥ १२४॥

जा रिपु से हारेहु हँसी, जितें पाप परिताप।
तासों रारि निवारिये, समय सँभारिय आप ॥१२५॥

जिस शत्रु से हार जाने में अपनी हंसी हो और जीत जाने में पाप एवं क्लेश हो। ऐसों से विरोध पड़ने के समय, स्वयं संभाल कर, झगड़ा-त्याग दीजिये॥ १२५॥

जो मधु मरे, न मारिये, माहुर देइ सो काउ।
जग जिति हारे परसुधर, हारि जिते रघुराउ ॥१२६॥

जो मीठा-मधु देने से मर जाय, उसे कोई विष देकर मत मारो। देखो! जगत-विजयी परशुरामजी श्रीरामजी की मीठी वाणी के आगे हार गये, और श्रीरामजी अपनी हार मानकर, जीत गये॥ १२६॥

वैर मूल हर, हित वचन, प्रेम मूल उपकार।
दो हा शुभ संदोह सो, तुलसी किये विचार ॥१२७॥

तुलसीदास जी कहते हैं, कि हितकारी मीठे वचन शत्रुता की जड़ को नष्ट करने वाले हैं, और हितकारी वचन प्रेम की जड़ तो हैं ही। देखो! दो हा अर्थात् हा हा खाना—विनती करना, कल्याण का समूह है। ऐसा विचार से सिद्ध है॥ १२७॥

रोष न रसना खोलिये, बरु खोलिये तरवारि।
सुनत मधुर परिनाम हित, बोलिय वचन विचारि ॥१२८॥

तलवार भले खोल लो, परन्तु जीभ से क्रोध-पूर्ण वचन न खोलो। कहा है कि तलवार का मारा 'पूज' जाता है, परन्तु वचन का मारा नहीं 'पूजता'। विचार कर ऐसा वचन बोलो, जो सुनने में मीठा और परिणाम में हितकारी हो॥ १२८॥

मधुर वचन कटु बोलिबो, बिनु श्रम भाग अभाग।
कुहू कुहू कल कंठ रव, का का कररत काग ॥१२९॥

मीठा बोलना तथा कड़वा बोलना, बिना परिश्रम के सौभाग्य-दुर्भाग्य को बुलाना है। देखो! कोयल 'कुहू-कुहू' मधुर शब्द करता है, तो लोग उसका आदर करते हैं, और कउवा जोर-जोर काँव-काँव करता है, तो लोग उसे ढेला मारकर उड़ा देते हैं॥ १२९॥

पेट न फूलत बिन कहे, कहे न लागइ ढेर।
सुमति विचारें बोलिये, समुझ सुफेर कुफेर ॥१३०॥

बात न कही जाय, तो पेट फूल नहीं जाता है, बात कह देने से बातों की ढेरी लग नहीं जायगी। अतः समय-असमय एवं कायदा-नियम समझ कर बुद्धि-सहित विचार कर बोलो॥ १३०॥

६७—वैराग्यवान की शरणागति—कल्याण-प्रद।

छिद्यो न तरुनि कटाच्छ सर, करेउ न कठिन सनेहु।
तुलसी तिनकी देह को, जगत कवच करि लेहु ॥१३१॥

युवतियों के तीव्र नेत्र-बाणों से जिन पुरुषों का हृदय नहीं घायल हुआ है, और जिन्होंने विषयों में या संसार में दृढ़ आसक्ति नहीं बनायी है। तुलसीदासजी कहते हैं, कि ऐ जगत् के लोगो—मुमुक्षुओ! ऐसे वैराग्यवान पुरुषों के शरीर को, अपनी रक्षा के लिये कवच (बक्तर) बना लो ॥ १३१ ॥

भाव—विरक्त पुरुषों की शरण में रहने से ही मुमुक्षु का कल्याण है।

६८—करो, कहो नहीं।

सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं बात।
विद्यमान रण पाइ रिपु, कायर कथहिं प्रलाप ॥१३२॥

वीर पुरुष संग्राम में वीरता का कार्य करते हैं, कहकर अपनी विशेषता की बात नहीं जनाते। रण में शत्रु को उपस्थित पाकर, कायर ही अपनी डींगे हाँकते हैं ॥ १३२ ॥

भाव—बातों में अपनी विशेषता न जनाओ। अच्छे आचरण-द्वारा कर्तव्यनिष्ठ बनकर अपना परिचय दो।

६९—अहंकारपूर्ण बात न करो।

वचन कहे अभिमान के, पारथ पेखत सेतु।
प्रभु तिय लूटत नीच भर, जय न मीच तेहि हेतु ॥१३३॥

श्री राम जी का बनाया हुआ रामेश्वर के पत्थर का पुल देखकर, एक समय अर्जुन ने अभिमानपूर्ण वचन कहे थे (कि श्रीरामजी इतने परिश्रम करके पत्थर के पुल क्यों बनाये थे? हम होते तो बाणों से ही पुल बना देते। इस अभिमान का फल यह हुआ कि) श्रीकृष्ण की स्त्रियों को हस्तिनापुर ले जाते समय, उन्हें साधारण भरों ने लूट लिया। अर्जुन उनपर विजय न कर सके, इस कारण अर्जुन की दशा मृत्यु सी हो गयी ॥ १३३ ॥

राम लखन विजयी भए, बनहुँ गरीब निवाज।
मुखर बालि रावन गये, घर हीं सहित समाज ॥१३४॥

दीनों पर कृपा करने वाले, स्वभाव से विनम्र श्रीराम-लक्ष्मण वन में रहते हुए भी विजयी हुए। परन्तु बकवास करने वाले बालि और रावण घर ही पर रहते हुए, समाज-सहित नष्ट हो गये ॥ १३४ ॥

७०—नीति पालने वाले की विजय।

खग मृग मीत पुनीत किय, बनहु राम नयपाल ।
कुमति बालि दशकंठ घर, सुहृद बन्धु कियो काल ॥१३५॥

श्रीरामजी वन में रहते हुए भी नीति का पालन करने के नाते, पशु पक्षी को भी अपना सच्चा मित्र बना लिये। और नीति-त्याग देने के कारण कुबुद्धि बालि और रावण, घर के हितैषी भाई सुग्रीव तथा विभीषण को भी काल बना लिये ॥ १३५ ॥

७१—प्रशंसनीय पुरुष कौन ?

लखइ अघानो भूख ज्यों, लखइ जीत में हार ।
तुलसी सुमति सराहिये, मग पग धरइ विचार ॥१३६॥

सांसारिक वस्तुओं के न रहने पर भी जो तृप्त रहता है, और जीत में भी अपनी हार मानता है। तथा जो विचार पूर्वक मार्ग में पैर रखता है, तुलसीदासजी कहते हैं, वही बुद्धिमान प्रशंसनीय पुरुष है ॥ १३६ ॥

२७—समय की महिमा।

लाभ समय को पालिबो, हानि समय की चूक ।
सदा विचारहि चारुमति, सुदिन कुदिन दिन दूक ॥१३७॥

उत्तम समय पाकर, अपना कल्याण-साधन कर लेना ही लाभ है; और समय पर धोखा खा जाना ही हानि है। अतएव सुन्दर बुद्धि वाले, यह सदैव विचार करते हैं, कि अच्छा या बुरा समय, दोही दिन का होता है ॥ १३७ ॥

भाव—उत्तम समय थोड़ा है, शीघ्र भजन कर लो।

सिन्धु तरन कपि गिरि हरन, काज साँइ हित दोउ ।
तुलसी समयहिं सब बड़ो, बूझत कहुँ कोउ कोउ ॥१३८॥

सीताजी की खोज के लिए समुद्र पार जाना और शक्ति-वाण से घायल लक्ष्मण को जिलाने के लिये द्रोणपर्वत से संजीवनी बूटी लाना—ये दोनों कार्य हनुमान जी अपने स्वामी (श्रीराम) के लिये ही किये। तुलसीदासजी कहते हैं, कि कोई-कोई इस रहस्य को समझते हैं, कि समय की ही प्रधानता होती है ॥ १३८ ॥

भाव—उपर्युक्त कार्य करना हनुमानजी के लिये सदैव बायें हाथ का खेल था। परन्तु उचित समय पर ये दोनों कार्य करने से, हनुमान जी की बड़ी प्रशंसा हुई, और रामजी अपने को उनका ऋणी समझें। अतः समय पर भला काम करने में न चूको।

तुलसी मीठी अमी ते, माँगी मिलै जो मीच।
सुधा सुधाकर समय बिनु, कालकूट ते नीच ॥१३६॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि समय पर—दुःखों से अत्यन्त पीड़ित एवं जीवन से घबराये हुए अवसर पर—यदि माँगने से मौत मिलजाय तो अमृत से भी मीठी लगती है। परन्तु समय बिना, अमृत और अमृत का घर चन्द्रमा के मिलने पर, वे विष से भी बुरे लगते हैं ॥ १३६ ॥

समरथ कोउ न राम सो सीय हरन अपराधु।
समयहिं साधे काज सब, समय सराहहिं साधु ॥१४०॥

उस समय श्रीरामजी के समान कोई बली न था, सीता का हरण रूप रावण का अपराध भी बहुत बड़ा था। परन्तु तो भी, राम ने रावण को तुरन्त नहीं मारा, सभी काम समय से किये, जो समय पर काम करता है, उसी की साधु पुरुष, प्रशंसा करते हैं ॥ १४० ॥

तुलसी तीरहु के चले, समय पायबी थाह।
धाइ न जाइ थहाइबी, सर सरिता अवगाह ॥१४१॥

तुलसीदास जी कहते हैं, नदी-तालाब के किनारे-किनारे चलने से भी, समय आने पर उसको थाह मिल जाता है। अथाह नदी-तालाबों में दौड़े-दौड़े घुसकर थाह नहीं लेना चाहिये। समय देखना चाहिये।

७३—प्रारब्ध की प्रबलता।

तुलसी जस भवितव्यता, तैसी मिलइ सहाइ।
आपुनु आवइ ताहिपै, ताहि तहाँ लै जाइ॥ १४२॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जैसे प्रारब्ध-भोग होता है, वैसे ही बाहर से भी सहायता मिल जाती है। कहीं तो प्रारब्ध-भोग मनुष्य के पास आता है, और कहीं तो मनुष्य को ही होनहार के घटना-स्थल पर ले जाता है॥ १४२॥

७४—विवेकी बनो।

पात पात को सींचिबो, न करु सरग तरु हेत।
कुटिल कटुक फल फरैगो, तुलसी करत अचेत॥१४३॥

कल्पवृक्ष के फल के लिए पत्ते-पत्ते (हर वृक्षों) को सींचने की आवश्यकता नहीं है। नहीं तो तुम्हें मार डालने वाला, टेढ़ा और तीता फल फलेगा॥ १४३॥

भाव—मोक्ष की प्राप्ति के लिये नाना कर्म करते मत भटको, नहीं तो उन कर्मों का परिणाम बुरा होगा। मोक्ष के लिये विवेक की आवश्यकता है।

७५—विश्वास का महत्व।

गठिबँधते परतीति बड़ि, जेहि सबको सब काज।
कहब थोर समुझब बहुत, गाड़े बढ़त अनाज॥ १४४॥

गठबन्धन से विश्वास बड़ा होता है, जिससे सबका काम होता है। कहने में तो बात छोटी है, परन्तु समझने में बड़ी है। देखो! विश्वास करके मनुष्य पृथ्वी में अनाज के दाने गाड़ देता है, तो वे वृक्ष के रूप में बढ़कर, अनाज के कई गुणा फल देते हैं॥१४४॥

७६—धर्म में दृढ़ रहो।

सहि कुबोल साँसति सकल, अँगइ अनट अपमान।
तुलसी धरम न परिहरिय, कहि करि गये सुजान॥१४५॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि दुष्टों के कुवचन और सम्पूर्ण क्लेशों को सहलो, और व्यर्थ अपमान-अनादर को भी स्वीकार करलो; परन्तु

धर्म का त्याग न करो। बड़-बड़े विवेकी पुरुष, ऐसी ही शिक्षा दे गये और आचरण कर गये हैं ॥ १४५ ॥

७७—परोपकार करो, अपकार नहीं।

अनहित भय परहित किये, पर अनहित हित हानि।
तुलसी चारु विचारु, भल, करिय काज सुनि जानि ॥१४६॥

परोपकार करने में अपने हित की हानि का तो केवल भय ही रहता है, अर्थात् परोपकार करने में अपना अहित नहीं हो सकता। परन्तु पराये का अहित करने से तो अपने हित की हानि निश्चित ही है। तुलसीदास जी कहते हैं कि सुन्दर विचार ही उत्तम होता है। अतएव सुन-समझ कर, पर-हित करो, पर-अहित न करो ॥ १४६ ॥

७८—विवेक पूर्वक व्यवहार ही श्रेष्ठ है।

तुलसी सो समरथ सुमति, सुकृती साधु सयान।
जो विचार व्यवहरइ जग, खरच लाभ अनुमान ॥१४७॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि वही सामर्थ्यवान बुद्धिमान, पुण्यवान साधु तथा सयाना, है जो लाभ के भीतर खर्च करता है और जगत् के सब उचित कार्य विचार करके बरतता है ॥ १४७ ॥

७९—मन के चार कांटे।

जूठहि निज रुचि काज करि, रूठहिं काज बिगारि।
तीय तनय सेवक सखा, मन के कंटक चारि ॥१४८॥

स्त्री, पुत्र, सेवक और मित्र यदि ये अपनी रुचि के अनुसार ही कार्य करके—मनमती बर्ताव बरत के सन्तुष्ट होवें और काम बिगाड़ कर भी रूठना सीखे हों। तो ये चारों कांटे के समान मन में खटकते हैं ॥ १४८ ॥

८०—निरादर के पात्र।

दीरघ रोगी दारिदी, कटुवच लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान तउ, होहिं निरादर जोग ॥१४९॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि चाहे प्राणों के समान प्यारे हों, परन्तु बहुत दिन का रोगी, दरिद्र, कटुबोलने वाला और लालची—ये चारों निरादर के पात्र हो जाते हैं ।। १४९ ।।

८१—पांच दुःखदायी ।

पाही खेती लगन बट, रिन कुब्याज मग खेत ।
बैर बड़े सों आपने, किए पाँच दुख देत ।।१५०।।

पाही की खेती, पथिक से स्नेह, बहुत ब्याज का कर्ज रास्ते पर खेत तथा अपनी शक्ति से अधिक बड़े लोगों से बैर करने से, ये पांचो दुखदायी होते हैं ।। १५० ।।

८२—बलवान पापी से वैर करना अच्छा नहीं ।

धाय लगै लोहा ललकि, खैंचि लेइ नइ नीच ।
समरथ पापी सों बयर, जानि बिसाही मीच ।।१५१।।

'जैसे चुम्बक पत्थर में लोहा दौड़कर चिपक जाता है, इसी प्रकार कपटपूर्ण नम्रता दिखाकर नीच मनुष्य अपनी ओर लोगों को खींच लेता है। इसी भांति बलवान पापी से वैर करना क्या है, जान बूझकर मौत खरीदना है ।। १५१ ।।

८३—शोचनीय कौन है ?

शोचिय गृही जो मोह वश, करइ धर्म पथ त्याग ।
शोचिय यती प्रपंचरत, बिगत विवेक विराग ।।१५२।।

वह गृहस्थ शोचनीय है, जो अज्ञान वश धर्म मार्ग छोड़ दे। इसी प्रकार वह साधु शोचनीय है, जो विवेक-वैराग्य त्याग करके, संसार-प्रपंच में आसक्त है ।। १५२ ।।

८४—परमार्थ से हीन ही अन्धा है ।

तुलसी स्वारथ सामुहो, परमारथ तन पीठ ।
अन्ध कहें दुःख पाइहैं, डिठियारो केहि डीठ ।।१५३।।

तुलसीदासजी कहते हैं कि जो स्वार्थ के सम्मुख है—सदैव स्वार्थ

में आसक्त है, और परमार्थ से पीठ दे रखी है। उसे यदि अन्धा कहा जाय, तो वह दुखी होगा, परन्तु उसे आँख वाला भी कहा जाय, तो किस आँख के बल पर ! ॥ १५३ ॥

भाव—कल्याण-साधन-त्याग कर जो विषय में आसक्त है, वह अन्धा है। यदि उसके विवेक-नेत्र होते, तो हितकारी भजन-भक्ति-त्यागकर, भयंकर विषयों में न लिपटता।

बिन आँखिन की पानही, पहिचानत लखि पोय।
चारि नयन के नारि नर सूझत मीच न माय ॥१५४॥

बिना आँखों वाली जूती पेर को देखकर पहचान लेती है। परन्तु चार[1] आँख वाले नर-नारियों को भयंकर माया और मृत्यु नहीं दिखती ॥ १५४ ॥

८५—मूर्ख को उपदेश नहीं लगता।

जो पै मूढ़ उपदेश के, होते जोग जहान।
क्यों न सुजोधन बोध के, आए श्याम सुजान ॥१५५॥

यदि संसार में मूर्ख मनुष्य उपदेश के योग्य होते, तो बुद्धिमान श्रीकृष्ण क्यों नहीं दुर्योधन, को समझा सके। (पाण्डव की ओर से दूत बनकर कौरवों को समझाने के लिये श्रीकृष्णजी गये थे, परन्तु तनिक भी न समझा सके।) ॥ १५५ ॥

फूलई फरइ न बेत, यद्यपि सुधा बरसहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं विरंचि सम ॥१५६॥

चाहे बादल अमृत वर्षें, परन्तु बेंत फूलता-फलता नहीं। इसी प्रकार चाहे ब्रह्मा के समान बुद्धिमान गुरु मिल जायँ, तो भी मूर्ख मनुष्य चेत में नहीं आता ॥ १५६ ॥

१—दो बाहर के नेत्र और विवेक-विचार रूप दो भीतर के नेत्र—ये चार नेत्र।

रीझि आपनी बूझ पर, खीझि विचार विहीन।
ते उपदेश न मानहीं, मोह महोदधि मीन ॥१५७॥

जो लोग अपनी समझ-बुद्धि को सर्वोत्तम मानकर उसी में मस्त हैं, और बिना बिचारे दूसरे की हितकारी बात पर भी क्रोध प्रकट करते रहते हैं। वे अज्ञान के महान समुद्र के मछली बने लोग, हितकारी उपदेश नहीं मान सकते ॥ १५७ ॥

८६—अधिक मनन की आवश्यकता।

अन समझे अनु सोचनो, अवसि समुझिए आपु।
तुलसी आपु न समुझिए, पल पल पर परितापु ॥१५८॥

जो बात नहीं समझी है, उसपर बारम्बार मनन-विचार कीजिये; फिर अवश्य ही अपने आप समझ जायँगे। तुलसीदास जी कहते हैं, कि उस बात को समझे बिना यदि आप उसका आचरण कर लिये, तो आपको पल-पल पर क्लेश होगा ॥ १५८ ॥

८७—मूर्ख शिरोमणि कौन!

कूप खनत मन्दिर जरत, आयें धारि बबूर।
बवहिं नवहिं निज काज सिर, कुमति सिरोमनि कूर ॥१५६॥

घर में आग लगने पर जो कूँआ खोदते हैं, शत्रु की सेना चढ़ आने पर अपने मकान की रक्षा के लिये चारों ओर बबूल बोते हैं, तथा समय पड़ने पर अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये शिर नवाते हैं—ये ही मूर्खों के शिरमौर और क्रूर हैं ॥ १५६ ॥

८८—ज्ञान-मदी को उपदेश करना व्यर्थ।

जो सुनि समुझि अनीति रत, जागत रहै जु सोय।
उपदेशबो जगाइबो, तुलसी उचित न होय ॥१६०॥

तुलसीदासजी कहते हैं, कि यदि कोई ज्ञान की बात सुन-समझ कर भी अनीति में लीन है, और जो जागते-जागते सोने की नकल कर रखा है; उसका उपदेश करना और जगाना, अच्छा नहीं होगा।

बहु सुत बहु रुचि बहु बचन, बहु आचार व्यवहार ।
इनको भलो मनाइबो, यह अज्ञान अपार ॥१६१॥

बहुत पुत्रों में अनेक प्रकार की इच्छाओं में, बहुत बात करने में तथा अनेक प्रकार के आचार-व्यवहार रखने में-इन सबों में जो अपना कल्याण मानता है--यह अपार अज्ञान के लक्षण हैं ॥१६१॥

८९—संसार को प्रसन्न नहीं किया जा सकता ।

लोगनि भलो मनाव जो, भलो होन की आश ।
करत गगन को गेंडुआ, सो सठ तुलसीदास ॥१६२॥

संसार में अपने को उत्तम पुरुष प्रसिद्ध करने की आशा से, जो संसारी लोगों को प्रसन्न करना चाहता है। तुलसीदास जी कहते हैं, वह मूढ़ आकाश को तकिया बनाना चाहता है ॥ १६२ ॥

भाव—संसार को प्रसन्न कर पाना असम्भव है। अतः संसार की स्तुति-निन्दा से मुड़कर, अपने गुण दोषों को देखो। संसार चाहे आपको बुरा कहे, परन्तु आप में बुराई नहीं होनी चाहिये। ध्यान रहे ! स्तुति-निन्दा की परवाह छोड़कर, अनीति करना-पतित होना—यह शिक्षा का दुरुपयोग है, अपराध है।

अपजस जोग कि जानकी, मनि चोरी की कान्ह ।
तुलसी लोग रिझाइबो, करषि कातिबो नान्ह ॥१६३॥

पतिव्रता सीता जी क्या अपयश के योग्य थी (जो नीच धोबी ने ताना मारा और प्रजा के बहुत लोग विवाद किये)। क्या श्रीकृष्ण जी मणि की चोरी किये थे ? कदापि नहीं। तुलसीदास जी कहते हैं कि संसार को प्रसन्न करना उसी प्रकार है, जैसे जोर से खींचकर महीन सूत कातना ॥ १६३ ॥

तुलसी जो पै गुमान को, होतो कछु उपाउ ।
तौ कि जानकी जानि जिय, परिहरते रघुराउ ॥१६४॥

तुलसीदासजी कहते हैं, कि प्रजा के मनके गुमान[1] (सन्देह) को दूर करने के लिए, यदि कोई दूसरी युक्ति होती । तो श्री सीता जी को अपने हृदय में निर्दोष जानकर भी, श्रीरामजी क्या उनका त्याग करते । अर्थात् नहीं करते ॥ १६४ ॥

९०—दुःख की जड़ प्रतिष्ठा ।

माँग मधुकरी खात ते, सोवत गोड़ पसारि ।
पाप-प्रतिष्ठा बढ़ि परी, ताते बाढ़ी रारि ॥१६५॥

पहले मधुकरी (घर-घर की रोटी) माँग कर खाते थे, तो पाँव पसार कर सुख पूर्वक सोते थे । परन्तु जब से यह पाप रूपी प्रतिष्ठा बढ़ गयी, तब से झगड़े बढ़ गये ॥ १६५ ॥

तुलसी भेड़ी की धसनि, जड़ जनता सनमान ।
उपजत ही अभिमान भो, खोवत मूढ़ अपान ॥१६६॥

तुलसीदास जी कहते हैं, कि भोली जनता-द्वारा-मान सम्मान होना भेड़िया धंसान के समान है—एक भेड़ी जहाँ गिरी, वहाँ सब गिरीं । एक ने बड़ाई की, वहाँ सब बड़ाई करने लगे । परन्तु इस मिथ्या मान बड़ाई के आरंभ होते ही, अहंकार उत्पन्न होने लगता है, और मनुष्य अपने आपा को खो बैठता है—और अपने पद से गिर जाता है ॥ १६६ ॥

९१—भेड़िया धँसान ।

लही आँखि कब आँधरे, बाँझ पूत कब ल्याइ ।
कब कोढ़ी काया लही, जग बहराइच जाइ ॥१६७॥

नाना कामनाओं को लेकर, संसारी लोग, बहराइच[1] जाते हैं । परन्तु इसका कोई पता नहीं लगाता, कि वहाँ जाकर किस अन्धे ने आँख पायी है, कौन-सी बन्ध्या कब वहाँ से पुत्र लेकर आयी है, और किस कोढ़ी ने कब सुन्दर काया पायी है ? ॥ १६७ ॥

१–'गुमान' शब्द फारसी भाषा में प्रयुक्त है, इसका अर्थ होता है—सन्देह, शक, अनुमान, गर्व, घमण्ड । यहाँ का अर्थ केवल 'सन्देह' है ।

१२—ऐश्वर्य, निर्भय की वस्तु नहीं।

तुलसी निरभय होत नर, सुनियत सुर पुर जाय।
सो गति लखियत अछत तनु, सुख सम्पति गति पाइ ॥१६८॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसी (कल्पित) बातें सुनी जाती हैं, कि स्वर्ग में जाकर जीव निर्भय हो जाता है—बूढ़ा रोगी नहीं होता, मनमानी सुख-भोग भोगता है, परन्तु इस बात की परीक्षा तो शरीर रहते-रहते यहीं कर लो, कि सुख-सम्पत्ति और ऊँची पदवी पाकर अहंकार-वश मनुष्य अपने को निर्भय मानता है, परन्तु उसे वास्तविक निर्भयता और सुखशान्ति कहाँ है ? ॥ १६८ ॥

भाव—ऐश्वर्य में निर्भयता तथा सुख-शान्ति नहीं।

तुलसी तोरत तीर तरु, बक हित हंस बिडारि।
विगत अनिल अलि मलिन जल सुरसरिहू बढ़िआरि ॥१६९॥

तुलसी दास जी कहते हैं, कि गंगा में भी जब बाढ़ आती है, तब वह तट के वृक्षों को उखाड़ फेंकती है। बकुलों के हित के लिये, हंस को उड़ा देती है। कमल और भौरों से रहित होकर, उसका जल मलीन हो जाता है ॥ १६९ ॥

भाव—जो सावधान नही रहते, ऐसे सज्जन भी प्रतिष्ठा और धन-ऐश्वर्य पाकर प्रमाद के वश हो जाते हैं और दीन-आश्रयी जनों को उखाड़ फेंकते हैं। दम्भियों की रक्षाके लिये, ज्ञानियों को खदेड़ देते हैं। कोमलता और सद्गुण से रहित होकर, मन मलीन बना लेते हैं।

१—अयोध्या से पश्चिम-उत्तर कोण पर स्थिति बहराइच जिला में, बहराइच-शहर में सैयद सालारगंज मसउदगाजी—गाजीं मियाँ की दरगाह है। हर साल जेठ महीने में यहां बहुत विशाल मेला लगता है। यहां कोढ़ी-अन्धे-बन्ध्या आदि नाना इच्छाओं की पूर्ति के लिये आते हैं, और चढ़ाव-बजाव करते हैं। गाजी मियाँ महमूद गजनवी का भानजा था। यह गाजी (वीर) बनने की इच्छा से अवध की ओर बढ़ आया था। श्रावस्ती के राजा-सुहृदेव के हाथों से यह मारा गया। इसी की कबर लोग पूजते हैं।

अधिकारी वश औसरा, भलेउ जानिये मन्द।
सुधा सदन बसु बारहें, चउथें चउथिउ चन्द ॥१७०॥

अपना कुदिन आने पर, अच्छे पदाधिकारी को भी बुरा करने वाला ही समझिये। देखो! चन्द्रमा अमृत का घर माना जाता है, परन्तु आठवे, बारहे, चौथे, तथा भादौं सुदी चौथी के दिन देखने पर अहितकर हो जाता है—ऐसा माना है ॥ १७० ॥

भाव—अपने टेढ़े दिन आने पर, सीधे भी अपने लिये टेढे हो जाते हैं।

९३—स्वामी की अपेक्षा, नौकर अधिक अत्याचारी होते हैं।

त्रिविधि एक विधि प्रभु अनुग, अवसर करहिं कुठाट।
सूधे टेढ़े सम विषम, सब महँ बारहबाट ॥१७१॥

समय पर यदि स्वामी एक प्रकार से बुराई करता है; तो कर्मचारी एवं नौकरगण तीन प्रकार से बुराई करते हैं। वे सीधे-सज्जन से भी टेढ़ा बर्ताव करते हैं समतालु से भी विषमता करते हैं, और सब कार्यों से भ्रष्टता कर देते हैं ॥ १७१ ॥

प्रभुतें प्रभु गन दुखद लखि, प्रजहिं सँभारे राउ।
करते होत कृपान को, कठिन घोर घन घाउ ॥१७२॥

स्वामी की अपेक्षा स्वामी के अनुगामी-गण अधिक दुःखदायक होते हैं, देखो! हाथ की चोट की अपेक्षा हाथ में लिये हुए खड्ग की चोट अत्यन्त भयंकर और गहरी होती है। ऐसा समझ कर राजा या स्वामी का कर्तव्य है कि वह अपनी प्रजा या अनुयायियों को, बुराइयों से सम्हाले ॥१७२ ॥

व्यालहुँते विकराल बड़, व्याल फेन जिय जानु।
वहि के खाये मरत हैं, वहि खाये बिनु प्रानु ॥१७३॥

अपने मन में ऐसा जानो कि साँप से भी अहिफेन—अफीम भयंकर होता है। साँप के काटने से मनुष्य मर जाते हैं, और अफीम के

खाने से, मनुष्य जीते हुए भी बिना प्राण का मुर्दा-सा बेहोश हो जाता है ।। १७३ ।।

कारन ते कारज कठिन, होय दोष नहिं मोर ।
कुलिस अस्थि तें उपल तें, लोह कराल कठोर ।।१७४।।

अपनी कठोरता बतलाते हुए भरत जी कहते हैं—कारण से कार्य कठिन होता है, इसमें हमारा दोष नहीं है (दुष्ट कैकेयी से उत्पन्न होने के कारण, मैं उससे भी दुष्ट हूं) । देखो ! दधीचि की हड्डी से बना हुआ बज्र, हड्डी से भी कठोर हुआ, और पत्थर से बना लोहा, पत्थर से भी कठोर हो जाता है ।।१७४।।

जथा अमल पावन पवन, पाइ कुसंग-सुसंग ।
कहिअ कुवास सुवास तिमि, काल महीस प्रसंग ।।१७५।।

जैसे निर्दोष एवं शुद्ध वायु सुगन्धित-दुर्गन्धित वस्तुओं के संसर्ग पाकर सुगन्धित दुर्गन्धि कहा जाता है। वैसे ही भले-बुरे राजा का प्रसंग पाकर निर्दोष 'समय' अच्छा-बुरा कहा जाता है ।। १७५ ।।

भलेहु चलत पथ पोच भय, नृप नियोग नय नेम ।
सुतिय सुभूपति भूषियत, लोह सँवारित हेम ।।१७६।।

राजा की भली आज्ञा, निष्पक्ष-स्वार्थ रहित नीति तथा दृढ़ता से प्रयोग किये हुए न्यायपूर्ण कानून के कारण भले लोग भी पाप-पथ पर चलने से डरते हैं। जैसे लोह के हथौड़े से गढ़कर बनाये हुए सोने के आभूषण, सुन्दर स्त्री और अच्छे राजा को विभूषित करते हैं ।। १७६ ।।

९४—उत्तम राजा के लक्षण ।

माली भानु किसान सम, नीति निपुन नरपाल ।
प्रजा भाग वश होहिंगे, कबहुँ कबहुँ कलिकाल ।।१७७।।

माली, सूर्य तथा किसान के सदृश, नीति में निपुण राजा—प्रजा के भाग्य से—कलिकाल में कभी-कभी होंगे ।। १७७।।

माली—फुलवारी की पूर्ण रक्षा करके, फूल लेता है। ऐसे प्रजा की पूर्ण रक्षा करके राजा को कर लेना चाहिये।

सूर्य—प्रत्यक्ष में किसी को कष्ट न देते हुए, समुद्र से जल शोषण कर सूर्य बादल बनाता है और मीठा जल संसार को देता हैं। इसी प्रकार किसी को कष्ट न देकर राजा को चाहिये कि प्रजा को सुख दे।

किसान—गोड़-जोत कर, बो-सींचकर तथा नाना प्रकार के प्रबन्ध करके खेती की रक्षा किसान करता है। फसल पक जाने पर फिर काट-ता है। इसी प्रकार प्रजा की पूर्ण प्रकार से रक्षा करके ठीक समय आने पर उनसे कर लेना चाहिये।

बरषत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोय।
तुलसी प्रजा सुभाग से, भूप भानु सो होय ॥१७८॥

पृथ्वी या समुद्र से जब सूर्य जल खींचता है, तब इसको कोई नहीं देख पाता। परन्तु जब बरसाता है, तब सब देखते और हर्षित होते हैं। तुलसीदासजी कहते है, इस प्रकार सूर्य के समान नीतिवान राजा, प्रजा के सौभाग्य से ही होता है ॥ १७८ ॥

भाव—राजा को चाहिये कि वह प्रजा से इतनी सरलता से कर वसूल करे कि प्रजा को कष्ट न हो और उसी धन को प्रजा के हित में भली-भाँति लगावे, जिससे प्रजा सुखी हो।

९५—राजनीति।

सुधा सुनाज कुनाज फल, आम असन सम जानि।
सु प्रभु प्रजा हित लेहिं कर, सामादिक अनुमानि ॥१७९॥

दूध-घी आदि अमृत, अच्छा अन्न, मध्यम अन्न, लता के फल तथा आम आदि के फल-इन सबको खाने की योग्यता में समान जानकर, अच्छे राजा, प्रजा के हित के लिये, साम-दाम आदिक नीति-यों को समझ कर, कर के रूप में लेते हैं ॥ १७९ ॥

पाके पकए विटप दल, उत्तम मध्यम नीच।
फल नर लहैं नरेश त्यों, करि विचार मन बीच ॥१८०॥

उत्तम लोग पके फल तोड़ते हैं, मध्यम लोग कच्चे ही तोड़कर पकाते हैं और नीच लोग पेड़ के पत्ते ही तोड़ डालते हैं। हृदय में विचार करो, इसी प्रकार उत्तम राजा फसल पक जाने पर, कर-वसूल करते हैं, मध्यम राजा कच्ची फसल पर ही वसूल करने लगते हैं और दुष्ट राजा अकाल पड़ने पर भी, कर लिये बिना नहीं छोड़ते ॥१८०॥

रीझि खीझि गुरु देत सिख, सखा सुसाहिब साधु।
तोरि खाइ फल होइ भल, तरु काटे अपराधु ॥१८१॥

गुरु, मित्र, अच्छे स्वामी और साधुजन प्रसन्न होकर तथा (न मानने पर) रोष करके भी यही शिक्षा देते है, कि फल तोड़ करके खाने में भलाई है, वृक्ष ही काट डालने में पाप है ॥ १८१ ॥

भाव—राजा प्रजा से सहानुभूति के साथ उचित कर ले, प्रजा को चूसे नहीं।

धरनि धेनु चारितु चरत, प्रजा सुबच्छ पेन्हाइ।
हाथ कछू नहिं लागि हैं, किये गोड़ कि गाइ ॥१८२॥

पृथ्वी रूपी गाय, राजा की प्रजा वत्सलता एवं नीति-धर्म मय उत्तम चरित्र रूप घास को चरकर और प्रजारूपी बछड़े के पीने से जब पन्हा जाती है; तब मनइच्छित दूध देती है। केवल गाय के पैर बाँधकर दुहने से, कुछ भी हाथ नहीं लगेगा ॥ १८२ ॥

चढ़े बधूरे चंग ज्यों, ज्ञान ज्यों शोक समाज।
करम धरम सुख सम्पदा, त्यों जानिये कुराज ॥१८३॥

बवण्डर में पड़ी हुई पतङ्ग, तथा शोक-समूह में पड़े हुए विवेक-जैसे नष्ट हो जाते हैं। वैसे खराब राज्य में सत्कर्म, मानव-धर्म, यथार्थ-सुख और सम्पत्ति सब नष्ट हो जाते हैं ॥ १८३ ॥

कंटक करि करि परत गिरि, शाखा सहस खजूर।
मरहिं कुनृप करि करि कुनय, सो कुचालि भवभूरि ॥१८४॥

खजूर की हजारों शाखायें, काँटे बना-बना कर टूट-टूट कर गिर

पड़ती हैं। इसी प्रकार खराब राजा अपार अनीत कर-करके संसार में बारम्बार जन्मते-मरते हैं ॥ १८४ ॥

काल तोपची तुपक महि, दारू अनय कराल ।
पाप पलीता कठिन गुरु, गोला पुहुमी पाल ॥१८५॥

काल (समय) तोप चलाने वाला है, पृथ्वी तोप है, भयंकर अनीति बारूद है, पाप पलीता (आग) है तथा महान भयंकर गोला दुष्ट राजा है ॥ १८५ ॥

भाव—दुष्ट राजा-द्वारा प्रजा का नाश होता है।

९६ अचल राज्य किसका ?

भूरि रुचिर रावन सभा, अंगद पद महिपाल ।
धरम राम नय सीय बल, अचल होत शुभकाल ॥१८६॥

भूमि रूपी रावण की मनोहर सभा में, धर्मरूपी राम और नीति रूपी सीता की शक्ति से, शुभ समय में, राजा रूपी अंगद का पैर अचल हो जाता है ॥ १८६ ॥

भाव—प्रजा पर जो धर्म-नीति का बर्ताव करता है, वह राजा बहुत दिन स्थिर रहता है ॥

करके कर मनके मनहिं, वचन वचन गुन जानि ।
भूपहि भूलि न परिहरै, विजय विभूति सयानि ॥१८७॥

जिस राजा के हाथ में हाथ के गुण—रक्षा करना, दान देना आदि हैं। मन में मन के गुण—प्रजा वत्सलता, क्षमा, दया, उदारता आदि हैं। वचन में वचन के गुण—मिष्ट भाषण, सत्यता तथा हितैषी कथन आदि हैं। उसे विजय, विभूति और बुद्धिशीलता, भूलकर भी नहीं छोड़ती ॥ १८७ ॥

गोली बान सुमन्त्रसर, समुझि उलटि मन देखु ।
उत्तम मध्यम नीच प्रभु, वचन विचारी विशेषु ॥१८८॥

गोली, सामान्य वाण तथा सुमन्त्रित वाण के गुणों को मनमें समझ

कर तथा उनके क्रम को उलट कर एवं विवेक करके देखो, कि उत्तम, मध्यम तथा नीच राजाकी बात क्रमशः ऐसी ही होती है ॥ १८८ ॥

भाव—उत्तम राजा की बात सुमन्त्रित वाण के समान अचूक होती है, जो कभी व्यर्थ नहीं जाती। मध्यम राजा की बात सामान्य वाण के समान होती है, जो समय से काम भी करती है, और चूक भी जाती है। परन्तु नीच राजा की बात गोली के समान शब्द तो बड़े जोरों से करती है, परन्तु यदि चूक गयी, तो बिलकुल व्यर्थ जाती है।

शत्रु सयानो सलिल ज्यों, राखु शीश रिपु नाव।
बूड़त लखि पगडगत, लखि, चपरि चहूँ दिशिवाव ।। १८९॥

चालाँक शत्रु जल के तुल्य शत्रु रूपी नावका को अपने शिर पर रखता है—दिखावा मात्र शत्रु का बड़ा सम्मान करता है। परन्तु शत्रु को डूबते हुए या उसके पैर लड़खड़ाते हुए देखकर, शीघ्रतापूर्वक चारों ओर से धावा बोल देता है ॥ १८९ ॥

भाव—चालाँक शत्रु के द्वारा अपना सम्मान पाकर भूलो नहीं, सावधान रहो; और स्वयं ऐसे धोखे का बर्ताव किसी के साथ न करो।

रैयत राज समाज घर, तन धन धरम सुबाहु।
शांति सुसचिव सौंपि सुख, बिलसइ नित नरनाहु ।।१९०॥

प्रजा, राजसमाज, घर, अपनी देह, सम्पत्ति, धर्मकार्य तथा सेना का, अच्छे शान्त-बुद्धि मन्त्री को सौंप कर, राजा सुख पूर्वक सदैव विहरता है ॥ १९० ॥

भाव—राजा के सुख तथा राज्य की ठीक व्यवस्था के लिये, उत्तम शान्त-चित्त मन्त्री होना चाहिये।

मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान को एक।
पालइ पोषइ सकल अंग, तुलसी सहित विवेक ॥१९१॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि मुखिया (प्रधान स्वामी या राजा) मुख के समान होना चाहिये, जो खाने के लिये तो एक ही है।

परन्तु विवेक पूर्वक शरीर के सारे अंगों का पालन-पोषण करता है॥ १९१ ॥

सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होइ ।
तुलसी प्रीति की रीति लखि, सुकबि सराहहिं सोइ ॥१९२॥

हाथ, पैर तथा नेत्र के समान सेवक को होना चाहिये, और मुख के समान स्वामी (राजा) को होना चाहिये । तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसी प्रीति की रीति देखकर, अच्छे कवि प्रशंसा करते है ॥१९२॥

भाव—हाथ-पैर-नेत्र खाद्य-पदार्थों के संग्रह में श्रम करते हैं और हर काम में सहायता करते हैं । इसी प्रकार सेवक को होना चाहिये। और मुख खाकर केवल अपना ही पोषण नहीं करता, बल्कि उस खाये हुए भोजन का रस सारे शरीर को देकर सब अंगों का पोषण करता है । इसी प्रकार स्वामी या राजा संग्रहीत धन का केवल अपना ही उप-भोग न करे । बल्कि सेवकों का पेट भरकर, सबको सन्तुष्ट करे ।

सचिव बैद गुरु तीन जो, प्रिय बोलहिं भय आश ।
राज धर्म तन तीन कर, होइ बेगि ही नाश ॥१९३॥

मन्त्री, वैद्य और गुरु—ये तीनों यदि अप्रसन्नता के डर से या धन-प्राप्ति की आशा से मुखदेखी बात (लल्लो-चप्पो) करते हैं । तो राज, शरीर और धर्म—इन तीनों का शीघ्र ही नाश हो जाता है ॥ १९३ ॥

रसना मन्त्री दसन जन, तोष पोष निज काज ।
प्रभु कर सेन पदादिका, बालक राज समाज ॥१९४॥

(राजा पेट है) मन्त्री जीभ है तथा अन्य पदाधिकारी एवं कर्म-चारीगण दाँत हैं । जिस प्रकार दाँत खाद्य वस्तुओं को चबाकर, जीभ अपनी लार मिला कर पेट में पहुंचा देती है । और पेट रसको पकाकर सारे अंगों में भेजकर पुष्ट करता है । इसी प्रकार राज्य कर्मचारीगण अपनी ओर से, राजा का सब काम सम्हालते और सेवा करते हैं, बदले में राजा सबका पालन-पोषण करता है । फिर सेना और कर्मचारीगण

राजा के हाथ-पैर है। जैसे हाथ-पैर पेट की सेवा करता है और पेट
हाथ-पैर आदि सबको पालता है। वैसे कर्मचारी और सेना राजा की
रक्षा करते हैं और राजा उनको पालता है। पुनः पूरा राज समाज
बालक के सदृश्य है और राजा माता-पिता है अतएव माता-पितावत्
राजाको प्रजा बालक का पालन-पोषण करना चाहिये ॥ १६४ ॥

लकड़ी डउआ करछुली, सरस काज अनुहारि।
सुप्रभु संग्रहहिं परिहरहिं, सेवक सखा विचारि ॥१६५॥

लकड़ी का डउआ (करछुली) तथा धातु की करछुली—कार्य की
सरसतानुकूल—कभी किसीको काम में लिया जाता है, कभी किसी को।
इसी प्रकार बुद्धिमान स्वामी (या राजा) उत्तम-मध्यम सब प्रकार
के सेवक-मित्रों का संग्रह-त्याग, यथायोग्य करते हैं ॥ १६५ ॥

प्रभु समीप छोटे बड़े, रहत निबल बलवान।
तुलसी प्रगट बिलोकिए, कर अँगुली अनुमान ॥१६६॥

स्वामी (या राजा) के निकट छोटे-बड़े, शक्तिमान् तथा शक्तिहीन
सब प्रकार के मनुष्य रहते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं, प्रत्यक्ष में अपने
हाथ की अंगुलियों को देखकर, अनुमान लगा लीजिये। एकही हाथ में
पाँच अँगुलियाँ हैं, परन्तु पाँचों एक तुल्य नहीं हैं ॥ १६६ ॥

९७—सेवा-धर्म-परायण सेवक, स्वामी से बड़ा है।

साहब ते सेवक बड़ो, जो निज धर्म सुजान।
राम बाँधि उतरे उदधि; लाँघि गये हनुमान ॥१६७॥

यदि अपने सेवा-धर्म, आज्ञाकारिता में प्रवीण हो, तो स्वामी से
सेवक ही श्रेष्ठ हो जाता है। देखो। श्रीरामजी तो समुद्र में पुल बांध
कर उतरे थे, परन्तु हनुमानजी फाँद कर ही चले गये ॥ १६७ ॥

९८—निर्मिमानता पूर्वक परोपकार करने वाला ही श्रेष्ठ है।

तुलसी भल बरतरु बढ़त, निज मूलहिं अनुकूल।
सबहि भाँति सब कहँ सुखद, दलनि फलनि बिन फूल ॥१६८॥

तुलसीदासजी कहते है कि बरगद का पेड़ भला है, जो अपनी जड़ के अनुकूल बढ़ता है। और बिना फूले-बिना अभिमान किये—ही पत्तो-फल सहित, सब प्रकार से सबको सुख देता है ॥ १९८ ॥

भाव—अपनी शक्ति के अनुसार ही, अपना व्यवहार फैलाओ तथा अभिमान-त्याग कर सबकी सेवा करो।

९९—तीनों लोक के दीपक।

सघन सगुन सधरम सगन, सबल सुसाइँ महीप।
तुलसी जे अभिमान बिन, ते त्रिभुवन के दीप ॥१९९॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जो धनाढ्य, गुणवान, धर्मवान्, सेवक समाज-सहित, शक्तिशाली, स्वामी और राजा होते हुए भी अहंकार से रहित हैं, वे तीनों[1] लोकों के दीपक-प्रकाशक हैं ॥ १९९ ॥

१००—बड़ों की संगत से बड़ाई मिलती है।

बड़ो गहे ते होत बड़, ज्यों बावन कर दण्ड।
श्री प्रभु के संग सो बढ़ो, गयो अखिल ब्रह्मण्ड ॥२००॥

बड़े लोग जिसे अपना लेते हैं, वह भी बड़ा हो जाता है। जैसे बावन जी के हाथ का दण्ड (डंडा), उनके साथ बढ़ कर, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तक पहुंच गया ॥ २०० ॥

भाव—दृष्टान्त कल्पित है। सिद्धान्त यह है कि बड़ों की संगत से छोटा भी बड़ा हो सकता है-यह सत्य है।

१०१—कपटीदानी की दुर्दशा।

तुलसी दान जो देत हैं, जल में हाथ उठाइ।
प्रतिग्राही जीवे नहीं, दाता नरके जाइ ॥२०१॥

तुलसीदासजी कहते कि जो मनुष्य मछलियों को फंसाने के लिये हाथ उठाकर जल में दान देते हैं—बंसी में चुभा कर चारा डालते हैं।

1—सत, रज, तम—इन तीन गुणों वाला संसार ही तीनों लोक है।

उस दान को ग्रहण करने वाली मछली तो मारी जाती है, और वैसा दान देने वाला नरक में पड़ता है ॥ २०१ ॥

भाव—कपट करके दूसरे को मारने के लिए, उसे लोभ देने से दाता-ग्रहीता दोनों की हानि है।

१०२—स्व-जनों के त्याग देने पर, सब शत्रु हो जाते हैं।

अपना छोड़ो साथ जब, ता दिन हितू न कोइ।
तुलसी अंबुज अंबु बिनु, तरनि तासु रिपु होइ ॥२०२॥

अपने लोग जब साथ त्याग देते हैं, उस दिन अन्य कोई मित्र नहीं होता। तुलसीदासजी कहते हैं कि पानी से उत्पन्न हुए कमल को प्रफुल्ल करने वाला सूर्य, पानी से रहित कमल का शत्रु बन जाता है—उसे सुखा देता है ॥ २०२ ॥

१०३—कलियुग की कुटिलता।

कलि कुचालि शुभमति हरनि, सरलै दंडै चक्र।
तुलसी यह निश्चय भई, बाढ़ि लेत नव वक्र ॥२०३॥

कलिकाल की कुचाल शुद्ध-बुद्धि को नष्ट करने वाली है, देखो! राजचक्र भी, साधुजनों को दण्ड देता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह निश्चय हो गया है कि कलिकाल (भौतिकयुग) में नवीन-नवीन कुटिलता बढ़ रही है ॥ २०३ ॥

१०४—परस्पर मेल रखना उत्तम है।

गो खग खे खग वारि खग, तीनों माहिं विसेक।
तुलसी पीवें फिर चलैं, रहैं फिरै संग एक ॥२०४॥

तुलसीदासजी कहते हैं, पृथ्वी पर रहने वाले, आकाश में रहने वाले और पानी में रहने वाले—तीनों प्रकार के पक्षियों में यह विशेषता होती है, कि पानी पीने में, चलने-फिरने में और रहने में एक संग में झुण्ड-के-झुण्ड रहते हैं ॥ २०४ ॥

भाव—आप भी स्वजनों में प्रेम करके एकता से रहो।

१०५—समता की विशेषता ।

साधन समय सुसिद्धि लहि, उभय मूल अनुकूल ।
तुलसी तीनिउ समय सम, ते महि मंगल मूल ॥२०५॥

अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये अनुकूल साधन, अनुकूल समय तथा इन दोनों के मूल ध्येयरूप अनुकुल सिद्धि को पाकर भी जो तीनों काल (भूत-भविष्य-वर्तमान) में सम रहता है, तुलसीदासजी कहते हैं, वह पृथ्वी पर मंगल की जड़ है ॥ २०५ ॥

१०६—जीवन की सफलता कैसे ?

मात पिता गुरु स्वामि सिख, शिर धरि करहिं सुभाय ।
लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर, नतरु जनम जग जाय ॥२०६॥

माता पिता,, गुरु तथा स्वामी के उपदेश को जो स्वभाव से ही शिर पर धारण करके, पालन करता है। उसी ने ही जन्म धारण करने का फल प्राप्त किया; नहीं तो जगत् में जन्म धारण करना, निष्प्रयोजन है ॥ २०६ ॥

१०७—शरणागत का त्यागना पाप है ।

शरणागत कहँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पामर पापमय, तिनहिं विलोकत हानि ॥२०७।

अपनी हानि समझकर, जो आये हुए शरणागत का त्याग करता है। वह मनुष्य पापमय, नीच हैं, उसके मुख देखने से हानि है।

तुलसी तृन जल कूल को, निरबल निपट निकाज ।
कै राखै कै संग चलै, बाँह गहे की लाज ॥२०८॥

तुलसीदास जी कहते हैं, कि नदी के किनारे की घास कितनी शक्ति-हीन तथा निपट निकम्मी होती है। परन्तु डूबता हुआ मनुष्य जब उसकी शरण लेता है, अर्थात् उन घासों को पकड़ लेता है, तब या तो (शक्ति चले तक) वह मनुष्य को बचाती है (या शक्ति न

चलने पर) उखड़ कर उसी मनुष्य के साथ चल पड़ती है। इस प्रकार बाँह पकड़ने (शरणागत लेने) की लाज वह रखती है ॥२०८॥

१०८—कलियुग के लक्षण ।

रामायन अनुहरत सिख, जग भयो भारत रीति ।
तुलसी सठ की को सुनै, कलि कुचालि पर प्रीति ॥२०९॥

रामायण के अनुसार तो शिक्षा दी जाती है (कि सब लोग राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न के समान प्रेम-समता पूर्वक रहो, भाई के लिये स्वार्थ का त्याग रक्खो) । परन्तु संसार के लोग महाभारत के अनुसार होते हैं (कौरव पाण्डव के तुल्य भाई-भाई में परस्पर बैर रखते हैं) । तुलसीदास जी कहते हैं, कि हम ऐसे मूर्ख की बात कौन सुनने वाला है, कलिकाल में बुरे आचरण पर ही प्रेम है ॥ २०९ ॥

पात पात कै सींचबो, बरी बरी कै लौन ।
तुलसी खोंटे चतुरपन, कलि डहके कहुकौन ॥२१०॥

पत्ते-पत्ते में पानी डालना और एक-एक बरी में नमक मिलाना—तुलसीदास जी कहतेहैं—ऐसी खोटी चतुरता से कलिकाल में कौन नहीं ठगा गया ? ॥ २१० ॥

भाव—पत्ते-पत्ते में पानी डालने से जड़ में न जाने से, पेड़ का कोई लाभ नहीं । इसी प्रकार एक-एक बरी में नमक डालने से परिश्रम अधिक पड़ता है और सब बरियों में नमक बराबर नहीं पडता । इसी प्रकार इन्द्रियों के सहित एक मन को न रोक करके, जप योग, हवन तर्पण, तीर्थ-व्रत-उपवास एवं नाना कल्पित जड़ देवी-देवताओं की उपासना करते फिरने से, परिश्रम तो अधिक होता है, परन्तु जीव का कल्याण नहीं हो पाता । सद्गुरु श्रीकबीर साहेब भी कहते हैं—

एक साधे सब साधिया, सब साधे एक जाय ।
जैसे सांचै मूल को, फूलै फलै अघाय ॥

(बीजक)

अतएव एक—मन को साधो-रोको।

प्रीति सगाई सकल विधि, बनिज उपाय अनेक।
कल बल छल कलिमल मलिन, डहकत एकहि एक॥२११॥

पाप से मलिन-मन वाले प्रेम-सम्बन्ध जोडकर वाणिज्य-व्यापारादि अनेक युक्तियों से, कला दिखाकर जबर्वस्ती तथा कपट करके सब प्रकार से एक को एक ठगते हैं॥ २११॥

दम्भ सहित कलि धरम सब, छल समेत व्यवहार।
स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अचार॥२१२॥

मलीन मन वाले के सब धर्माङ्ग दिखावा युक्त होते हैं; व्यवहार छल-कपट पूर्ण होता है। सभी प्रेम स्वार्थ युक्त तथा सब आचरण इच्छानुसार (मनमती) होते हैं। (गुरु-मत का विचार नहीं होता)

चोर-चतुर बटपार-नट, प्रभु-प्रिय भडुआ भण्ड।
सब भच्छक-परमारथी, कलि सुपन्थ-पाखण्ड॥२१३॥

कलि (पाप से ग्रसित मनुष्यों की दृष्टि) में चोर ही बुद्धिमान है। लुटेरा ही खिलाड़ी है, नाच-गाकर तथा प्रशंसा करके भोले-भालों को रिझाने वाले भड़ुवा-भाँट ही स्वामियों को प्रिय हैं। भक्ष्य (दाल-भात-रोटी आदि) अभक्ष (मास, मछली, अण्डा-शराब, गाँजा-भाँग आदि) सब कुछ खाने वाले ही परमार्थी-साधु हैं, नाना पाखण्ड ही कल्याण-पथ है॥ २१३॥

भाव—बुद्धिहीन लोग—चतुरता से दूसरे के अधिकार को छीन लेने वाले को—बुद्धिमान मानते हैं।

बुद्धिहीन लोग—मार-पीट कर दूसरे के धन को लूट लेने वाले को—खिलाड़ी समझते हैं।

बुद्धिहीन स्वामी—भडुआ-भाँट तथा चापलूस ही को प्रिय मानते हैं। सदाचारी, सत्यवादी को नहीं।

बुद्धिहीन लोग—मांस-मद्यादि तथा गाँजा-भाँग, बीड़ी-सिगरेट तम्बाकू सब कुछ खाने पीने वाले को, महात्मा मानते हैं।

बुद्धिहीन लोग—नाना प्रकार के पाखण्ड ही को कल्याण का पन्थ मानते हैं।

अशुभ वेष भूषन धरे, भक्ष्याभक्ष जे खाहिं।
तेइ योगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलियुग माहिं ॥२१४॥

जो लोग (चर्म-हडडी आदि) के अशुद्ध वेष-अलङ्कार बनाये रहते हैं और खाने योग्य तथा न खाने योग्य—सब कुछ खाते हैं। कलियुग (मलीन मन, बुद्धिहीनों की दृष्टि) में वे ही योगी और सिद्ध हैं और वे ही पूजे जाते हैं॥ २१४॥

जो अपकारी चार, तिनकर गौरव मान्यता।
मन क्रम वचन लबार, ते बक्ता कलिकाल महँ ॥२१५॥

जो लोग अपने आचरण से दूसरे की हानि करते रहते हैं, उन्हीं की संसार में महिमा है, और वे ही श्रेष्ठ माने जाते हैं। मन, वचन तथा शरीर से जो लम्पट (मिथ्यावादी) हैं वे ही कलियुग (बुद्धिहीनों की दृष्टि) में प्रवक्ता (कथावाचक) हैं॥ २१५॥

ब्रह्मज्ञान बिन नारि नर, कथहिं न दूसरि बात।
कौड़ी कारण लोभ वश, करहिं बिप्र गुरु घात ॥२१६॥

संसार के नर-नारी ब्रह्मज्ञान के अतिरिक्त दूसरी बात नहीं करना चाहते, परन्तु वे ही (मिथ्या ब्रह्मज्ञानी) कौड़ी के लिये गुरु-ब्राह्मण पर घात कर बैठते हैं। (कहते हैं, एक ब्रह्म में कौन मारता है कौन मरता है यथा:—

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥

गीता (१८।१७)

'जिसके मन में कर्तृत्व का अभिमान नहीं है तथा जिसकी बुद्धि कर्मों में लिपायमान नहीं होती। वह इन सारे लोकों को मार करके भी न मारता है और न बंधता है।'

इन लोगों को यह समझ में नहीं आता कि जिसके मन में अहंकार-कामना न होगी, वह किसी को क्यों मारेगा ?) ॥ २१६ ॥

सुर सदननि तीरथ पुरिन, निपट कुचालि कुसाज ।
मनहुँ मवासे मारि कलि, राजत सहित समाज ॥२१७॥

देवालयों-मन्दिरों, तीर्थों तथा पुरियों में अत्यन्त कुकर्म भ्रष्टाचार फैल गये हैं। मानों इन स्थलों पर कलि-काल (पाप) अपने समाज—काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ, कपट पाखण्ड, हिंसा, बलात्कार, व्यभिचार, अभक्ष-सेवन आदि—सहित किला रोप कर विराजता है ॥ २१७ ॥

गोंड गँवार नृपाल महि, जमन महा महिपाल ।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल ॥२१८॥

कलिकाल में जंगली-बेवकूफ लोग पृथ्वी के राजा हो रहे हैं और (हिंसा पर अत्यन्त प्रीति रखने वाले) यवन लोग बादशाह हो रहे हैं। अतएव साम, दाम, भेद-इन तीनों नीतियों का प्रयोग-त्यागकर, केवल भयंकर दण्ड ही दे रहे हैं ॥ २१८ ॥

फोरहि सिल लोढ़ा सदन, लागें अडुक पहार ।
कायर कूर कुपूत कलि, घर घर सहस डहार ॥२१९॥

जिस प्रकार पर्वत का ठोकर लगने पर, उस पर कुछ वश न चलने से, क्रोधित होकर कोई अपने घर के शिल-लोढ़ा फोड़ने लगे। वैसे ही घरवालों को कष्ट देने वाले कलिकाल में हजारों की संख्या में कायर, क्रूर और कुपुत्र घर-घर हैं ॥ २१९ ॥

कलियुग कोई ऐसा हिंसकी जन्तु नहीं कि ऊपर से चढ़ बैठता हो। यह समय का एक कल्पित विभाजन है। शास्त्र-पुराणों के अनुसार सत्युग, त्रेता, द्वापर पर दृष्टि फेरने से, उस समय कम अत्याचारी नहीं दिखते। आज सब अत्याचारी हों, एसी बात नहीं ! सत्युग, त्रेता, द्वापर कलियुग—ये चारों युग हर समय हैं। पापी-पुण्यात्मा,

साधु-असाधु हर समय होते हैं। हाँ! समय के फेर से कुछ न्यूनाधिक होते रहते हैं, अतएव हम लोग हर समय अपना पूर्ण सुधार कर सकते हैं। भक्ति ज्ञान तथा पूर्ण वैराग्य-पथ पर चल सकते हैं। कलियुग रूप घोघर से डरने की आवश्यकता नहीं।

१०९—हम शक्तिमान किसमें ?

श्रवन घटहु पुनि दृग घटहु, घटउ सकल बल देह।
इते घटें घटि हैं कहा, जो न घटै हरि नेह ॥२२०॥

कानों से कम सुन पड़े, पुनः आँख से भी कम दिख पड़े, यहाँ तक सारे शरीर का बल घट जाय। परन्तु इनके घटने से हमारी कोई हानि नहीं है, यदि हरि से प्रेम न घटे॥ २२०॥

गोस्वामी जी इष्ट हरि हैं, इसलिये उसमें प्रेम रहने में वे अपनेको बलशाली मानते हैं। विवेकी को इससे शिक्षा लेना चाहिये कि शरीर के क्षीण होने में हम वास्तविक निर्बल नहीं हैं, यदि गुरु-ज्ञान (स्व-स्वरूप चैतन्य) में हम निष्ठ हैं।

११०—असमय का प्रभाव

तुलसी पावस के समय, धरी कोकिलन मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं, हमें पूछि हैं कौन ॥२२१॥

तुलसीदासजी कहते हैं, कि बरसात के समय कोयल यह समझकर मौन हो जाती है, कि अब तो मेढक टर्र-टर्र करेंगे, हमें कौन पूछेगा ?॥ २२१॥

भाव—बुरा समय आने पर दुष्ट लोगों की बात चलती है, सज्जन को कोई नहीं पूछता। इसलिये वे मौन साधकर निवृत्त रहेते हैं।

१११—भाषा की विशेषता।

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये साँच।
काम तो आवे कामरी, का लै करी कमाच ॥२२२॥

क्या भाषा अर्थात् हिन्दी और क्या संस्कृत, (सन्मार्ग, सत्पुरुष, सत्संग एवं प्राणी मात्र में) प्रेम सच्चा होना चाहिये। काम में तो मोटा कम्बल आता है, फिर रेशमी-दुशाले लेकर क्या करें ? ॥२२२॥

भाव—बोध करने-कराने में भाषा की ही विशेषता संस्कृत की है, नहीं, फिर चाहे जो हो, सत्य के लिये प्रेम शुद्ध होना चाहिये। यथा कबीर-गुरु का वचन है—

पढ़ि पढ़ि के पाथर हुआ, पण्डित हुआ न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम के, पढ़े सो पण्डित होय॥

सद्गुरवे नमः

तुलसी-पंचामृत

तृतीय-विन्दु

तुलसी-कवितावली से संकलित

१—उपदेश।

विषया पर नारि निसा तरुनाई सो पइ परयो अनुरागहि रे।
जम के पहरू दुख, रोग वियोग बिलोकत हू न विरागहि रे॥
ममता बस तैं सब भूलि गयो, भयो भोरु, महा भय, भागहि रे।
जरठाइँ दिशा, रबि काल उग्यो, अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे॥

जवानी रूपी घोर रात्रि में, विषय रूप परायी स्त्री के संग में पड़कर, तू उसकी आसक्ति में लीन हो गया है। यम के पहरेदार दुःख, व्याधि, वियोग को देखकर भी तेरे को वैराग्य नहीं होता? सांसारिक ममता के अधीन होकर, (अपना कल्याण-साधन) तू भूल गया है, सबेरा हो गया, महान भयानक संसार से भाग! वृद्धावस्था रूपी पूर्व दिशा में, काल रूपी सूर्य उदय हो गया है; हे मूढ़ जीव! अभी भी नहीं सावधान होता?॥ १॥

२—कपट-भक्ति

वेष सु बनाइ सुचि वचन कहैं चुवाइ।
जाइ तौ न जरनि धरनि धन धाम की।
कोटिक उपाय करि लालि पालियत देह,
मुख कहिअत गति राम ही के नाम की॥
प्रकटैं उपासना दुरावैं दुरबासनहिं,
मानस निवास भूमि लोभ मोह काम की।

राग रोष ईर्ष्या कपट कुटिलाई भरे,
तुलसी से भगत भगति चाहैं राम की ॥२॥

पवित्र साधु का-सा वेष बना कर, जो लोग बात तो अमृत की-सी टपकाते हैं, परन्तु धन, घर, पृथ्वी की तृष्णा की जलन नहीं जाती। करोड़ों उपाय करके स्थूल शरीर का ही लालन-पालन (विलास) करते हैं, और मुख से कहते हैं 'मुझे राम-नाम का ही भरोसा है।' दिखावा मात्र का उपासना-भक्ति सबसे प्रकट करते हैं और अपनी बुरी वासनाओं को छिपाते हैं, उनके अन्तःकरण रूपी भूमिका में लोभ, मोह और काम के ही निवास हैं। राग, क्रोध, ईर्ष्या, कपट और टेढ़ापन मन में भर रखे हैं, गोस्वामीजी कहते हैं कि ऐसे कपटी भक्त लोग, राम की भक्ति चाहते हैं॥ २॥

३—मनुष्य का प्रमाद

कालिहीं तरुन तन, कालिहीं धरनि धन,
कालिहीं जितौंगो रन, कहत कुचालि है।
कालिहीं साधौंगो काज, कालिहीं राजा समाज,
मसक ह्वै कहै, भार मेरे मेरु हालि है॥
तुलसी यही कुभाँति घने घर घालि आई,
घने घर घालति हैं, घने घर घालि है।
देखत सुनत समुझत हू न सूझै सोई,
कबहूँ कह्यो न कालहू को कालु कालि है॥३॥

आचरण के भ्रष्ट लोग कहते हैं—कल ही यौवन शरीर मिल जायगा, कल ही पृथ्वी, धन प्राप्त कर लूँगा, कल ही संग्राम में विजय प्राप्त कर लूँगा। कल ही सब कार्य सिद्ध कर लूँगा और कल ही राज-समाज सज लूँगा, मच्छड़ का-सा मनुष्य कहता है कि मेरे बोझ से सुमेरु पर्वत हिल जायगा। गोस्वामीजी कहते हैं कि इस कुचाल से

बहुत वर नष्ट हो गये, वर्तमान में नष्ट हो रहे है और भविष्य में नष्ट होंगे। देखते, सुनते और समझते हुए भी उसको नही सूझता, यह कभी नहीं कहता है, कि कल आयु का अन्त हो जायगा॥ ३॥

४—संसार से लापरवाही।

धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटीसे बेटा न व्याहब काहू की जाति बिगारि न सोऊ॥
तुलसी सरनाम गुलाम है रामको जाको रुचै सो कहै कछुसोऊ।
माँगिकै खैइबो मसीद कै सोइबो, लैबौ कै एक न दैबोको दोऊ॥४॥

चाहे कोई हमें धूर्त (ठग) कहे और चाहे कोई सन्यासी कहे, चाहे कोई राजपूत (क्षत्रिय) कहे और चाहे जोलाहा कहे। किसी की बेटी से अपना बेटा तो व्याहना नहीं है, और न किसी का सम्बन्ध जोड़ कर उसकी जाति बिगाड़ना हैं। गोस्वामी जी कहते हैं कि मैं प्रसिद्ध राम का गुलाम हूँ, जिसके मन में जो अच्छा लगे, वह भी कुछ कह ले। माँग के खाना है, मसजिद (देव-मन्दिर) में सोना है, न एक (किसी के दोष) लेना है और न दो (अपने तन का वीर्य और अपने हृदय का स्वत्व किसी को) देना हैं॥ ४॥

कोऊ कहै, करत कुसाज, दगाबाज बड़ो,
　　कोऊ कहै, राम को गुलाम खरो खूब है।
साधु जानै महासाधु, खल जानै महा खल,
　　बानी झूठी साँची कोटि उठति हबूब है॥
चहत न काहू सों न कहत काहू की कछू,
　　सबकी सहत, उर अन्तर न ऊब है।
तुलसी को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के,
　　राम की भगति भूमि मेरी मति दूब है॥५॥

कोई कहता है कि (यह तुलसीदास) छल-कपट आदि करता है और बड़ा ही धोखेबाज है, कोई कहता है कि राम का बड़ा सच्चा भक्त है। साधु जन तो मुझे महान साधु जानते हैं, और दुष्टजन मुझे महान दुष्ट रूप जानते हैं, (मेरे विषय में) सच्ची-झूठी करोड़ों बातों की लहरें उठती रहती हैं। किसी से कुछ चाहता नहीं हूँ और न किसी को कुछ कहता हूँ, सबकी (भली-बुरी) सहता हूँ, मन में कुछ घबराहट नहीं है। तुलसी का भला-बुरा तो राम के ही हाथ है, राम की भक्ति रूपी भूमि में मेरी बुद्धि दूब के तुल्य है ॥ ५ ॥

भाव—कोई कुछ भी कहे, हमें घबराना नहीं चाहिये। अपने गुरु-भाग में अडिग होकर मस्त चाल चलना चाहिये। हमारे कर्तव्य ठीक हैं, तो कोई कुछ नहीं कर सकता।
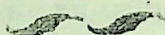
श्री सद् गुरवे नमः

तुलसी-पंचामृत

चतुर्थ-बिन्दु

तुलसी बिनय पत्रिका से संकलित

(१)

कबहूँ मन विश्राम न मान्यो ।
निसि दिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, जहँ तहँ इन्द्रिन तान्यो ॥१॥
यदपि विषय सँग सह्यो दुसह दुख, विषम जाल अरुझान्यो ।
तदपि न तजत मूढ़ ममता वश, जानत हूं नहिं जान्यो ॥२॥
जनम अनेक किये नाना विधि, कर्म कीच चित सान्यो ।
होइ न विमल विवेक नीर बिन, बेद पुरान बखान्यो ॥३॥
निज हित नाथ पिता गुरु-हरिसों, हरसि हृदय नहिं आन्यो ।
तुलसीदास कब तृषा जाय, सर खनतहि जन्म सिरान्यो ॥४॥

यह मन कभी सन्तुष्ट नहीं हुआ । स्व-स्वरूप का स्वाभाविक सुख (शान्ति) को भूल कर, इन्द्रिय-भोगो में आकर्षित होकर रात-दिन जहाँ-तहाँ भटकता रहा ॥ १ ॥ यद्यपि मैं विषयों के साथ असहनीय कष्ट सहे और भयंकर जाल में फँसे हैं। तिस पर भी मूर्ख मन ममता-वश विषयों को नहीं त्यागता, जानते हुए भी अनजान हो रहा है ॥२॥ अनेक जन्मों से नाना प्रकार के कर्म करके, उसी कीचड़ में मन लथपथ है । वेद-पुराण कहते हैं, कि विवेक रूप जल के बिना, मन निर्मल नहीं हो सकता ॥ ३ ॥ अपना कल्याण तो स्वामी और पिता रूप सर्व अज्ञान-हारी हरि-गुरुदेव से है, परन्तु हर्षित होकर कभी उनके चरणों

का प्रेम मन में नहीं लाया। गोस्वामी जी कहते हैं, कि सरोवर खोदते ही जीवन बीत गया, फिर प्यास कब जा सकती है ?॥ ४॥

(२)

माधव मोह फाँस किमि टूटै।
बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यन्तर ग्रन्थि न टूटै॥१॥
घृत पूरन कराह अन्तर्गत, शशि प्रतिबिम्ब दिखावै।
इन्धन अनल लगाय कल्प सत, औटत नाश न पावै॥२॥
तरु कोटर महँ बस बिहंग, तरु काटै मरै न जैसे।
साधन करिय विचार हीन मन, शुद्ध होय नहिं तैसे॥३॥
अन्तर मलिन विषयवश मन अति, तन पावन करिय पखारे।
मरइ न उरग अनेक जतन, बलमीकि बिविध विधि मारे॥४॥
तुलसीदास हरि-गुरु करुना बिन, बिमल विवेक न होई।
बिन विवेक संसार घोर निधि, पार न पावै कोई॥५॥

माधव ! मोह की फाँसी कैसे टूटे ? बाहर करोड़ों यत्न करने पर भी, हृदय-अन्तर की गाँठ (आसक्ति) नहीं टूटती ॥ १ ॥ घी से भरे कराह के बीच में चन्द्रमा की परिछाईं दिखती है। इन्धन और आग लगाकर शो कल्पों तक उसे औटाया जाय, परन्तु (घी रहते तक) वह प्रतिबिम्ब नष्ट नहीं होगा, (इसी प्रकार मोह के नाश हुए बिना, जन्म-मरण नहीं मिट सकते) ॥ २ ॥ वृक्ष के कोटर (खोढ़ले) में पक्षी रहता है, वृक्ष के काटने मात्र से जैसे वह नहीं मरता। इसी भाँति बाह्य अनेक साधनों के करने पर भी विवेक बिना मन पवित्र नहीं होता ॥ ३ ॥ (साबुन-पानी से) शरीर को मल-मलकर धोने से, अत्यन्त विषय से मलीन हुआ मन, उसी प्रकार नहीं शुद्ध होता, जैसे सर्प की बाँबी (बिल) को अनेकों प्रकार पीटने से तथा अन्य उपाय करने से, साँप नहीं मरता ॥ ४॥ गोस्वामी जी कहते हैं, अज्ञान-

हारी हरि-गुरुदेव के कृपा-उपदेश की प्राप्ति हुए बिना, निर्मल विवेक नहीं होता। और बिना विवेक के घोर संसार-सागर को कोई पार नहीं पा सकता ॥ ५ ॥

(३)

हे हरि यह भ्रम की अधिकाई।
देखत सुनत कहत समुझत, संशय-सन्देह न जाई ॥ १ ॥
जो जग मृषा ताप त्रय अनुभव, होइ कहहु केहि लेखे।
कहि न जाय मृगवारि सत्य, भ्रमते दुख होइ बिशेखे ॥ २ ॥
सुभग सेज सोवत सपने, बारिधि बूड़त भय लागै।
कोटिहुँ नाव न पार पाव सो, जब लगि आपु न जागै ॥ ३ ॥
अनविचार रमनीय सदा, संसार भयंकर भारी।
सम सन्तोष दया बिवेक ते, व्यवहारी सुखकारी ॥ ४ ॥
तुलसीदास सब बिधि प्रपंच जग, जदपि झूठ श्रुति गावै।
रघुपति भगति, सन्त-संगति बिनु, को भव त्रास नशावै ॥ ५ ॥

हे हरि! यह भ्रम की विशेषता है। देखते, सुनते, कहते, समझते संशय-सन्देह नहीं जाता ॥ यदि जगत मिथ्या है, तो किस कारण से तीनों तापों का अनुभव होता है? मृगजल (गर्मी के धूप में भासता हुआ जल) सत्य जल नहीं कहा जा सकता, भ्रम के कारण विशेष दुःख होता है। (जगत त्रयकाल सत्य होते हुए भी, उसमें सुख नहीं है, सुख-भास केवल मृगजलवत है,। यही दुःख का कारण है) ॥ २ ॥ सुन्दर शय्या पर सोते समय, स्वप्न के समुद्र में डूबने का भय लगता है। जब तक वह स्वतः नहीं जाग जाता, तब तक करोड़ों नावकायें भी, उसे पार नहीं कर सकतीं। (इसी प्रकार मोह-स्वप्न में सोया जीव जब तक स्वयं नहीं जागता, तब तक दुःख से नहीं छूटता) ॥ ३ ॥ बिना विवेक के ही यह संसार रमणीय (सुन्दर)

प्रतीत होता है, अन्यथा यह सदैव महान विकराल है। शम (वासना-नाश) सन्तोष, दया विवेक का व्यवहार करने से ही, यह सुखकारी हो सकता है ॥ ४ ॥ गोस्वामी जी कहते हैं, कि यद्यपि में जगत्-प्रपंच को सब प्रकार से वेद झूठ कह कर गाता हैं। परन्तु रघुपति भक्ति एवं सन्तों की संगत के बिना, जन्म-मरण का कष्ट कौन मिटा सकता है ? ॥ ५ ॥

रघु=इन्द्रिय; पति=स्वामी; अर्थात् जितेन्द्रिय सद्गुरु भी रघु-पति का अर्थ किया जा सकता है।

(४)

मन पछितैइहै अवसर बीते ।
दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु, करम वचन मन हीते ।
सहसबाहु दश बदन आदि, नृप बचे न कालबली ते ॥
हम हम करि धन धाम सँवारे, अन्त चले उठि रीते ॥२॥
सुत बनितादि जानि स्वारथ रत, न करु नेह सबहीते ।
अन्तहुँ तोहिं तजैंगे पामर, तू न तजै अबहीं ते ॥३॥
अब नाथहिं अनुराग जाग जड़, त्याग दुरासा जीते ।
बुझै न काम अगिन तुलसी कहुँ, विषय भोग बहु घीते ॥४॥

हे मन ! समय बीत जाने पर पछताना पड़ेगा। दुर्लभ नर जन्म पाकर, मन, वचन, कर्म से दुःखहारी हरि-पद-भजो (गुरु-पद की सेवा करो) ॥ १ ॥ सहस्रबाहु, रावण आदि वीर राजा कालबली से नहीं बचे। हम-हम करके लोग धन-धाम सवांरते हैं, परन्तु अन्त में खाली हाथ ही उठ चलते हैं ॥ २ ॥ स्त्री-पुत्रादि को स्वार्थासक्त जानकर, उन सब से मोह न कर। हे नीच ! ये सब अन्त में तुझे त्याग देंगे, तू अभी से ही इन्हें क्यों नहीं त्यागता ? ॥ ३ ॥ हे मूर्ख मन ! अब जाग; और (स्व-स्वरूप) स्वामी में प्रेमकर एवं हृदय से समस्त दुराशाओं को त्याग दे। गोस्वामी जी कहते हैं, कि विषय-भोग रूपी बहुत से घी से, काम की आग नहीं बुझ सकती ॥ ४ ॥

(५)

लाभ कहा मानुष तन पाये ।
काम वचन मन सपनेहु कबहुँक, घटत न काज पराये ॥१॥
जो सुख सुरपुर नरक गेह-वन, आवत बिनहिं बुलाये ।
तेहि सुख कहँ बहु यतन करत मन, समुझत नहिं समुझाये ॥२॥
पर दारा, पर द्रोह, मोह वश, किये मूढ़ मन भाये ।
गरभवास दुखराशि जातना, तीव्र विपति बिसराये ॥३॥
भय-निद्रा, मैथुन-अहार, सबके समान जग जाये ।
सुर दुरलभ तन धरि न भजे हरि, मद अभिमान गँवाये ॥४॥
गई न निज पर बुद्धि, शुद्ध ह्वै, रहे न राम-लय-लाये ।
तुलसीदास यह अवसर बीते, का पुनि के पछिताये ॥५॥

उत्तम मानव-तन पाकर क्या लाभ हुआ जबकि मन, वचन, कर्म से, वह किसी के उपकार में नहीं लगा ॥ १ ॥ जो विषय-सुख स्वर्ग, नरक, घर, वन में (हर स्थल पर) बिना बुलाये आता है। हे मन! उसी तुच्छ विषय-सुख के लिये तू नाना उद्योग करता है, समझाने पर भी नहीं समझता ॥ २ ॥ हे मूर्ख मन! अज्ञान-वश तू परायी स्त्री से प्रेम तथा पराये से वैर करने में रुचि करता है। गर्भवास में दुःखों के समूह, कठोर यातना और तीव्र विपत्ति भोगी है, परन्तु उसे तू भूल गया ॥ ३ ॥ भय, निद्रा, मैथुन, आहार—ये चारों जगत् में जन्मे हुए समस्त प्राणियों में एक समान हैं। परन्तु तू सुर दुर्लभ नर जन्म प्राप्त कर भी, हरि को नहीं भजा, (अज्ञान—हारी गुरुवर की सेवा नहीं की), मद-अभिमान-वश यों ही गवां दिया ॥४॥ मेरे-तेरे के राग-द्वेष की बुद्धि जिनकी नहीं गयी, मन पवित्र नहीं हुआ, राम (स्व-स्वरूप) में लगन नहीं लगी। गोस्वामीजी कहते हैं, कि इस उत्तम समय के बीत जाने पर, फिर उनका पीछे पश्चाताप करने से क्या होगा ? ॥५॥

सद्गुरवे नमः

तुलसी-पचामृत

पञ्चम-विन्दु

तुलसी-वैराग्य संदीपनी से संकलित

१—कर्म-रहस्य

तुलसी यह तनु खेत है, मन वच कर्म किसान।

पाप पुण्य दुइ बीज है, बवै सो लवै निदान ॥१॥

तुलसी दास जी कहते हैं, यह मानव तन खेत है और मन, वचन तथा कर्म किसान हैं। पाप-पुण्य दो बीज हैं, जो बोया जायेगा, वही अन्त में काटने को मिलेगा ॥ १ ॥

तुलसी यह तन तवा है, तपत सदा त्रय ताप।

शान्ति होइ जब शान्ति पद, पावै राम प्रताप ॥२॥

तुलसीदासजी कहते हैं, कि यह शरीर तावा के सदृश है, यह सदैव (दैहिक-दैविक-भौतिक इन) तीनों तापों से तपता रहता है। ताप तभी शान्त होंगे, जब राम प्रताप (स्व-स्वरूप के बल) से शान्ति-पद मिले ॥ २ ॥

२—सन्त-स्वभाव वर्णन

सरल बरन भाषा सरल, सरल अर्थ मय मानि।

तुलसी सरलै सन्त जन, ताहि परी पहिचानि ॥३॥

इस ग्रन्थ के अक्षर सरल हैं, भाषा भी सरल है, और अर्थ भी सरल माना जाता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि सन्तजन भी सरल होते हैं, अतः इसकी परख उन्हें हो गयी है ॥ ३ ॥

अति शीतल अति ही सुखदाई। शम दम राम भजन अधिकाई।

जड़ जीवन को करैं सचेता। जग में विचरत हैं यहि हेता ॥४॥

सन्तजन अत्यन्त शीतल और अत्यन्त सुख-प्रद होते हैं। वे मन-इन्द्रियों को अपने वश में रखते हैं, राम-भजन (चैतन्य स्वरूप की रति रूप भजन) की उनमें विशेषता होती है ।। जगत् में सन्तजन इसीलिये विचारते रहते हैं, कि वे भूले हुए जीवों को सचेत करके, कल्याण-पथ में लगाते हैं ।। ४ ।।

तुलसी ऐसे कहु कहूं, धन्य धरनि वह सन्त ।
परकाजे परमारथी, प्रीति लिये निबहन्त ।।५।।

तुलसीदासजी कहते हैं, कि ऐसे सन्त कहीं-कहीं मिलते हैं, वह पृथ्वी धन्य है, जहाँ ऐसे सन्त रहते हैं, वे परमार्थी जन पराये हित के लिये, मनुष्य का प्रेम निपटाते हैं ।। ५ ।।

की मुख पट दीन्हें रहैं, यथा अर्थ भाषन्त ।
तुलसी या संसार में, सो विचार युत सन्त ।।६।।

या तो मुख रूप किवाड़ को बन्द रखते हैं, या यथार्थ-हितकारी बात बोलते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, कि वे ही सन्त विचारवान् हैं ।। ६ ।।

बोलैं वचन विचारि कै, लीन्हें सन्त स्वभाव ।
तुलसी दुख दुर्वचन के, पन्थ देत नहिं पाँव ।।७।।

सन्त-स्वभाव को लिये हुए, वे विचार पूर्वक वचन बोलते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, कि वे सन्तजन दुष्ट-वचन के दुःखदायी मार्ग पर पैर नहीं रखते ।। ७ ।।

शत्रु न काहू करि गनैं, मित्र गनै नहिं काहि ।
तुलसी यह मत सन्त को, बोलैं समता माहिं ।।८।।

न वे किसी को शत्रु करके मानते हैं, और न किसी को मित्र करके मानते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं, कि सन्तों का यही मत ही होता है, कि वे समता पूर्वक बोलते हैं ।। ८ ।।

सो जन जगत जहाज हैं, जाके राग न रोष।
तुलसी तृष्णा त्यागि के, गहैं शील सन्तोष ॥ ९ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं, कि वे पुरुष संसार के लोगों को तारने के लिये जहाज के समान हैं, जिनके मन में राग और द्वेष नहीं हैं, और तृष्णा का त्याग करके शील-सन्तोष धारण करते हैं ॥ ९ ॥

निज संगी निजसम करत, दुर्जन मन दुख दून।
मलयाचल हैं सन्त जन, तुलसी दोष बिहून ॥ १० ॥

सन्त जन अपने सत्संगियों को अपने समान बना लेते हैं, और दुष्टों के मन में दूना दुःख बढ़ा देते हैं (सन्त के उपदेश और गुण-प्रकाश से दुष्ट लोग स्वयं जलते हैं) तुलसीदासजी कहते हैं, कि सन्त तो मलयागिरि चन्दन के समान निर्दोष शीतल होते हैं ॥ १० ॥

कोमल वाणी सन्त की, स्रवत अमृत मइ आइ।
तुलसी ताहि कठोर मन, सुनत मैन होइ जाइ ॥ ११ ॥

सन्तों की वाणी कोमल होती है, वह अमृत मय होकर मुख-द्वारा क्षरती है। तुलसीदासजी कहते हैं, जिसका मन कठोर है, ऐसी वाणी को सुनकर, उसका मन भी पिघलाये हुए मोम के सदृश हो जाता है ॥ ११ ॥

अनुभव सुख उत्पत्ति करत, भय भ्रम धरै उठाइ।
ऐसी वाणी सन्त की, जो उर भेदै आइ ॥ १२ ॥

सन्तों की उपर्युक्त वाणी को सप्रेम जो सुनता है, वह वाणी उसके हृदय को भेद डालती है। अनुभव सुख उत्पत्ति करती है, और भय-भ्रम को उठाकर पृथक रख देती है—नष्ठ कर देती है ॥ १२ ॥

शीतल बानी सन्त की, शशि हूँ ते अनुमान।
तुलसी कोटि तपन हरै, जो कोइ धारै कान ॥ १३ ॥

अनुमान लगता है कि चन्द्रमा से अधिक शीतल सन्त की वाणी

होती है। तुलसीदासजी कहते हैं, जो कोई उसे सप्रेम सुने, तो उसकी करोड़ों ज्वाला हरण करले ॥ १३ ॥

पाप ताप सब शूल नशावैं, मोह अन्ध रवि बहावैं।
तुलसी ऐसे सद्गुरु साधू, वेद मध्य गुण विदित अगाधू।

ज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिये, वे सूर्य रूपी वचन प्रकाशित करके समस्त पाप-ताप और क्लेशों को नष्ट कर देते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, कि ऐसे सद्गुण युक्त सन्तों के गुण वेदों में अपार रूप कहकर वर्णित है ॥ १४ ॥

तन करि मन करि बचन करि, काहू दूषत नाहिं।
तुलसी ऐसे सन्त जन, राम रूप जग माहिं ॥ १५ ॥

तन से, मन से और वचन से जो किसी को दोष नहीं लगाते। तुलसीदासजी कहते हैं, जगत में ऐसे सन्त जन राम स्वरूप ही हैं ॥१५॥

मुख दीखत पातक हरै, परशत कर्म विलाहिं।
वचन सुनत मन मोह गत, पूरब भाग्य मिलाहिं ॥ १६ ॥

उपर्युक्त प्रकार के सन्तों के मुख-दर्शन से पातक नष्ट हो जाते हैं, उनके चरण-स्पर्श (या निकट बैठने) से कर्म-बन्धन में विलीन हो जाते हैं। उनके बचनों को सुनने से मन मोह से रहित हो जाता है, ऐसे सन्त पूर्व के भाग्य उदय होने पर मिलते हैं ॥ १६ ॥

अति कोमल अरु विमल रुचि, मानस में मल नाहिं।
तुलसी रत मन होइ रहै, अपने साहिब माहिं ॥ १७ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि उन सन्तों की चेष्टा अत्यन्त कोमल और निर्दोष होती है; उनके मन में मैल नहीं रहता। वे अपने स्वामी (स्व-स्वरूप चैतन्य) में सदैव लीन मन वाले होते हैं ॥ १७ ॥

जाके मन ते उठि गयी, तिल तिल तृष्ना चाहि।
मनसा वाचा कर्मणा, तुलसी वन्दत ताहि ॥ १८ ॥

जिन पुरुषों के मन में सांसारिक विषयों की किञ्चिन्मात्र तृष्णा-इच्छा नहीं है। तुलसीदासजी कहते हैं कि मन, वचन और कर्म से ऐसे सन्त की मैं वन्दना करता हूँ ॥ १८ ॥

कंचन काँचहि करि गनै, कामिनि काष्ट पखान ।
तुलसी ऐसे सन्तजन, पृथ्वी ब्रह्म समान ॥ १९ ॥

सोने को जो काँच के टुकड़े करके जानते हैं, और स्त्री को काष्ट-पत्थर वत् समझते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि इस पृथ्वी पर ऐसे सन्तजन, ब्रह्म के समान है ॥ १९ ॥

भाव—पैसे से जो केवल निर्वाह लेता है, यथायोग्य व्यवहार बरतता है और विवेक से उस पैसे को कंकर-पत्थर समझता है। अनुचित संग्रह नहीं करता, न लोभ-तृष्णा करता है। और स्त्री-आसक्ति एवं सम्बन्ध का सर्वथा त्यागी है, वही सर्वश्रेष्ठ है!

कंचन को मृतका करि मानत। कामिनि काष्ट शिला पहिचानत।
तुलसी भूलि गयो रस येहा। ते जन प्रकट राम की देहा ॥२०॥

जो स्वर्ण को मिट्टी के सदृश मानते हैं; और स्त्री को काष्ट-पत्थर रूप देखते हैं। तुलसीदास जो कहते हैं, जो इस विषय-रस को भूल गये हैं, वे पुरुष प्रत्यक्ष राम के स्वरूप हैं ॥ २० ॥

आकिंचन इन्द्री दमन, रमन राम इकतार।
तुलसी ऐसे सन्त जन, विरले या संसार ॥ २१ ॥

जो माया के अधिक संग्रह से रहित, इन्द्रियों को दमन करने वाले और निरन्तर स्वरूप राम में रमण करने वाले हैं। तुलसीदास-जी कहते हैं कि ऐसे सन्त पुरुष संसार में बिरले-बिरले हैं ॥ २१ ॥

अहंवाद मैं तैं नहीं, दुष्ट संग नहिं कोइ।
दुखतें दुख नहिं उपजै, सुखतें सुख नहिं होइ ॥ २२ ॥
सम कंचन काँचै गनत, शत्रु मित्र सम दोइ।
तुलसी या संसार में, कहत सन्त जन सोइ ॥ २३ ॥

जो अहंकार पूर्वक नहीं बोलता, मैं-मैं, तू-तू नहीं करता । जो किसी प्रकार बुरे लोगों की संगत नहीं करता । प्रतिकूलता आने पर जो दुखी नहीं होता, तथा अनुकूलता आने पर सुख में नहीं फूलता ॥ २२ ॥ जो कंचन (द्रव्य-रूपयादि) से केवल व्यवहार बर्तता है। विवेक से उसे काँच का टुकड़ा ही समझता है और जो शत्रु-मित्र दोनों सदृश देखता है। तुलसीदासजी कहते हैं, कि इन्हीं को सन्त-पुरुष कहा जाता है ॥ २३ ॥

बिरले बिरले पाइये; माया-त्यागी संत ।
तुलसी कामी कुटिल कलि, केको केकु अनन्त ॥ २४ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं, माया-मोह से विरक्त संत विरले-विरले मिलते हैं। और मोर-मोरिन के समान (देखने-बोलने में सुन्दर, परन्तु साँप खाने वाले, हृदय के कठोर) पापपूर्ण कामी और क्रूर अनन्तों पड़े हैं ॥ २४ ॥

मैं तैं मेटेउ मोह तम, उग्यो आतमा भानु ।
संतराज सो जानिये, तुलसी या सहिदानु ॥ २५ ॥

जिनके हृदय में स्वरूप-ज्ञान रूपी सूर्य का उदय होकर, अहंता-ममता रूपी महान अज्ञान-अन्धकार नष्ट हो गया। तुलसीदासजी कहते हैं कि यही सन्त शिरोमणि होने का लक्षण जानिये ॥ २५ ॥

भाव—सन्तों में शिर-मुकुट वही है, जिसका सब अहंकार मिट जाय और स्व-स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होकर उसमें स्थित हो जाय।

३—सन्त-महिमा-वर्णन ।

को वर्णै मुख एक, तुलसी महिमा सन्त की ।
जिनके विमल विवेक, शेष महेश न कहि सकत ॥ २६ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि सन्तों की महिमा एक मुख से कौन वर्णन कर सकता है? जिन सन्तों के निर्मल विवेक हैं, उनकी महिमा शेष-महेश भी नहीं कह सकते हैं ॥ २६ ॥

महि पत्री करि सिन्धु मसि, तरु लेखनी बनाइ।

तुलसी गनपति सो तदपि, महिमा लिखी न जाय ॥ २७ ॥

पृथ्वी का कागज बनाया जाय, समुद्र की दावात तथा वृक्ष की लेखनी बनायी जाय, और गणेश जी लेखक बनें, तो भी सन्तों कीं अपार महिमा, लिखी नहीं जा सकती ॥ २७ ॥

भाव—सन्तों का ज्ञान और शान्ति अनन्त हैं, जड़-पदार्थों द्वारा उसका ज्ञान नहीं कराया जा सकता। सन्त बनकर ही, सन्तों के रहस्य का अनुभव किया जा सकता है।

धन्य धन्य माता-पिता, धन्य पुत्रवर सोइ।

तुलसी जो रामहि भजै, जैसेहुँ कैसेहुँ होइ ॥ २८ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं, कि उनके माता-पिता धन्य हैं; तथा वह श्रेष्ठ पुत्र धन्य है, जो जिस किसी भाँति भी राम-भजन (स्वरूप चिन्तन में) लवलीन है ॥ २८ ॥

तुलसी भगत सपंच भलो, भजै रैनि दिन राम।

ऊँचो कुल केहि काम को, जहाँ न हरि को नाम ॥ २९ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं, कि भक्त हो, भंगी हो तो भला है, क्योंकि वह रात-दिन राम-भजन करता है। जहाँ भक्ति-भजन नहीं है, ऐसा ऊंचा कुल, किस प्रयोजन का है ॥ २९ ॥

अति ऊँचे भूधरनि पर, भुजगन के स्थान।

तुलसी अति नीचे सुखद, ऊख अन्न अरु पान ॥ ३० ॥

अत्यन्त ऊंचे पर्वतों पर सर्पों के निवास-स्थान रहते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं, कि अत्यन्त नीचे मिष्ट पानी टिकता है, जीवनपोषक ऊख और अन्न होता है ॥ ३० ॥

भाव—नम्र लोगों में ही भक्ति होती है, जाति-विद्या-धनादि के मदियों में नहीं। गोस्वामीजी अन्य स्थल पर भी कहते हैं—

नीच नीच सब तरि गये, सन्त चरण लवलीन।

तुलसी जातहि के मदे, बूड़े बहुत कुलीन ॥

श्री कबीर साहेब भी कहते हैं--

मलयागिर के वास में, बेधा ढाक-पलास।
बेना कबहुं न बेधिया, जुग-जुग रहिया पास॥

अर्थ—मलयागिर की सुगन्धी में ढाक-पलास सुवासित होकर चन्दन हो गये। परन्तु युग-युग से पास रहने पर भी, बाँस में सुगन्धी का प्रवेश न हुआ। भाव यह कि नम्र लोगों में भक्ति-ज्ञान का सुगन्ध बेधता है, परन्तु अभिमानियों में नहीं समाता। वे निरस कड़े बाँसवत् हैं।

४—शान्ति-वर्णन

रन को भूषण इन्दु है, दिवस को भूषण भानु।
दास को भूषण भक्ति है, भक्ति को भूषण ज्ञानु॥३१॥
ज्ञान को भूषण ध्यान है, ध्यान को भूषण त्याग।
त्याग को भूषण शान्ति पद, तुलसी अमल अदाग॥३२॥

रात्रि की शोभा चन्द्रमा है, दिन की शोभा सूर्य है। सेवक की शोभा भक्ति करना है, भक्ति करने की शोभा स्वस्वरूप-ज्ञान की प्राप्ति है॥ ३१॥ स्वरूप-ज्ञान-प्राप्ति की शोभा उसमें ध्यान लग जाना है ध्यान लगने की शोभा विषयों-प्रपंचों का त्याग है। तुलसीदासजी कहते हैं, कि त्याग की शोभा, निर्मल-निर्दोष शान्ति-पद की प्राप्ति है॥ ३२॥

अमल अदाग शान्ति पद सारा। सकल कलेश न करत प्रहारा।
तुलसी उर धारैं जो कोई। रहै अनन्द सिन्धु महँ सोई॥३३॥

शान्ति-पद निर्मल, निर्दोष एवं सत्य है। सारे कष्ट मिलकर भी उसमें चोट नहीं कर सकते। तुलसी दास जी कहते हैं, कि ऐसे शान्ति पद को जो हृदय में धारण करेगा, वह सदैव सुख के सागर में लीन रहेगा॥ ३३॥

बिविध पाप संभव जो तापा, मिटहिं दोष दुख दुसह कलापा।
परम शान्ति सुख रहै समाई, तहँ उत्पात न भेदै आई॥३४॥

अनेकों पाप से उत्पन्न हुए जो ताप हैं, ऐसे असह दोष-दुःखों के समूह मिट जायंगे॥ ऐसे परम शान्ति रूप सुख में यदि लीन हो रहे, तो वहां किसी प्रकार के उत्पात आकर नहीं भेद सकते॥ ३४॥

तुलसी ऐसे शीतल संता। सदा रहैं यहि भाँति एकन्ता।
कहाँ करै खल लोग भुअंगा। कीन्हें गरल शील जोअंगा ॥३५॥

तुलसीदासजी कहते हैं, कि उपर्युक्त शान्ति को धारण करने वाले इस प्रकार के सन्त सदैव एकान्तमें रहते हैं। जो अपने अंगों को विषमय बनाये हैं, ऐसे सर्प-मय दुष्ट लोग, उन सन्तों का क्या कर सकते हैं ? ॥ ३५ ॥

अति शीतल अति ही अमल, सकल कामना हीन।
तुलसी ताहि अतीत गनि, वृत्ति शान्ति लयलीन ॥३६॥

जो अत्यन्त शीतल, अत्यन्त निर्मल, सम्पूर्ण विषय-इच्छाओं से रहित और शान्ति-वृत्ति में लवलीन हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, उसे ही गुणातीत—सिद्ध पुरुष समझना चाहिये ॥ ३६ ॥

जो कोइ कोप भरै मुख बैना। सन्मुख हतै गिरा सर पैना।
तुलसी तऊ लेश रिसि नाहीं। सो शीतल कहिये जगमाहीं। ३७॥

यदि कोई क्रोध भरे मुख से बात करे। तीखे तीर रूपी वाणी सम्मुख प्रहार करे ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, (उसको सुनकर) तिसपर भी जिसके किञ्चित्मात्र क्रोध न प्रकट हो, उसको संसार में शीतल एवं शान्त पुरुष कहते हैं ॥ ३७ ॥

सात दीप नौ खण्ड लौं, तीनि लोक जग माहिं।
तुलसी शान्ति समान सुख, अपर दूसरो नाहिं ॥ ३८ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं, कि सात दीप, नौ खण्ड तक एवं तीनों लोक-संसार में शान्ति के समान और दूसरा सुख नहीं है ॥ ३८ ॥

जहाँ शान्ति सद्गुरु की दई। तहाँ क्रोध की जर जरि गई।
सकल काम वासना बिलानी। तुलसी यहै शान्ति सहिदानी ॥३९॥

सद्गुरु की दी हुई जहाँ शान्ति है, उसके अन्तः-करण से क्रोध की जड़ भस्म हो गयी है। सम्पूर्ण कामना-वासना जब नष्ट हो गयी तुलसीदासजी कहते हैं, कि यही शान्ति की पहचान है ॥ ३९ ॥